एक कली दो कांटे

एक कली दो कांटे

कुमारी रीता

नव भारतीय प्रकाशन
४१४८ उर्दू बाजार, दिल्ली

प्रकाशक:—
नवभारतीय प्रकाशन
टी ८४ जंगपुरा लाइन
नई दिल्ली

प्रथम बार ११००
अक्तूबर १९५७
मूल्य
दो रुपये पचास नये पैसे
२-५०

मुद्रक:—
सिक्सन प्रेस
चावड़ी बाजार दिल्ली।

समर्पण

अपनी उसी प्रिय सहेली शिवकुमारी को
जिसका स्नेह मुझे हर क्षण
याद आता है ।

—रीता

आपसे...

मेरी यह पहली ही रचना है जो अनेक कंटकों को हटाकर आपके हाथों में जा रही है इसमें संग्रह के नाम पर एक भी कहानी नहीं है तब भी इसका नाम एक कली दो कांटें रखने का एक उद्देश्य है। ये कहानियाँ मनुष्य की उस लोलुपता के प्रति एक खुली चुनौती हैं जिसकी छत्रछाया में नारी सब कुछ अर्पण करने के बाद भी एक पहेली बनी हुई है। मनुष्य जो-कुछ भी करता है समाज, जाति, धर्म के नाम पर ही करता है पर वह घर की लक्ष्मी को सिर्फ एक दासी से ज्यादा नहीं समझता। क्या आज की नारी दासी ही रहेगी, क्या नारी का अस्तित्व सिर्फ आदमी के दिल बहलाने का एक साधन मात्र ही है। यही तो उन आदमियों की भूल है जो आज तक नारी को एक खिलौना ही समझते रहे हैं। वह युग बीत चुका जब नारी दासी थी। आज उसने अपने स्वरूप को पहचान लिया है और अपने हक के लिये पूरी सजग है। मेरी इन कहानियों में आप करुणा, दया की मूर्ति नारी को उस रूप में पायेंगे जिसके लिये नारी समाज ने अपने को जागरूक किया है।

सुविज्ञ पाठक ही इसका निर्णय कर सकेंगे कि कहानियाँ कैसी बन पड़ी हैं।

रीता

दो शब्द

श्री रीता कुमारी का प्रस्तुत कहानी संग्रह आपके हाथ में है आपकी कहानियाँ विविध हिन्दी साप्ताहिक पत्रों में निकलती रहती हैं। इसमें लेखिका ने नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है साथ ही पुरुष-वर्ग की लोलुपता का चित्रण भी विचित्र रूप से प्रस्तुत करना ही इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है ।

पाठकों को प्रत्येक कहानी में कुछ न कुछ विचित्रता, नवीनता तथा अनोखापन मिलेगा ।

मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी संसार इन कहानियों का आदर करके लेखिका का उत्साह बढ़ायेगा, क्योंकि हिन्दी साहित्य आगे भी लेखिका से बहुत कुछ आशा रखता है ।

——**प्रकाशक**

विषय-सूची

अन्धेरा उजाला

रात खिसक रही थी। विश्व के कण-कण पर मौनता एवं अन्धकार का राज्य छाया हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो प्रकाश की शक्तियाँ स्थाई रूप से अन्धकार के सम्मुख पराजित हो गई हैं किन्तु वास्तविकता उसके विपरीत थी। वस्तुत: वही अन्धकार अपने गर्भ में प्रकाश लिये तीव्र गति से चीत्कार करता हुआ ऊषा की किरणों से अलिंगन करने के लिए भागा जा रहा था।

प्रदीप जेल के अन्दर बन्द था। उसके मन एवं बुद्धि पर निराशा के काले बादल छाये हुए थे। अकस्मात् उसका कल्पना पक्षी कारागार की ऊँची-ऊँची दीवारों को फांद कर अन्धकार को चीरता हुआ अतीत के स्वर्णिम पथ पर उड़ने लगा।

बाईस वर्षीय प्रदीप का जीवन विशाल संसार में एक सामान्य मनुष्य की भांति व्यतीत हो रहा था। वह अकेला था। क्योंकि बहन भाई और माता-पिता सब साम्प्रदायिक झगड़ों में मारे जा चुके थे। यद्यपि यह दु:ख असह्य था और जख्म काफी गहरे थे तथापि समय के साथ-साथ वह जख्म भरते जा रहे थे और वह भूतकालीन कटुताओं को भूलकर वर्तमान से लाभ उठा कर सुन्दर एंव सुनहरे भविष्य के स्वप्न देखने लगा था।

स्वप्न को साकार रूप में परिवर्तित करने के लिए उसने लांडरी की दुकान पर परची काटने एवं प्रेस करने का काम शुरू कर दिया था। वह दिन भर परचियां काटता, इस्तरी करता और शाम होने पर

पुस्तकें उठा कर प्राईवेट कालेज में पढ़ने के लिए चला जाता ताकि एफ०ए० की परीक्षा दे सके। बहुत कम लोग ऐसे थे जो यह जानते थे कि प्रदीप काम करने के साथ-साथ पढ़ता भी है। आखिर किसी को जरूरत भी क्या थी कि कोई एक मामूली प्रेसमैन की जिन्दगी पर दृष्टि रखता, कि उसका दिन भर का क्या प्रोग्राम है ? कहां जाता है ? जिंदगी के क्या मनोविनोद हैं।

उसकी जिन्दगी में रंज नहीं था, खुशी भी नहीं थी। सिसकियों नहीं थीं—कहकहे भी नहीं थे। जिन्दगी एक खामोश सितारा था जिस पर अकेलेपन की धूल जम चुकी थी। वह अपनी आधुनिक परिस्थियों से सन्तुष्ट था। या आप यों समझिये कि उसको परिस्थियों ने सन्तोप का कवच धारण करने के लिये विवश कर दिया था।

अकस्मात उसके शांतिमय जीवन में एक इन्कलाब आया। आंधियां चलीं, और उसकी जिन्दगी कटुताओं का पुंज बन कर रह गई। हाय आंधी, यह तूफान, यह भूचाल एवं बवंडर मोहना अपने हसीन आँचल में लिए उनकी जिन्दगी में दाखिल हुई थी।

रविवार की रात थी। नौ बजे थे 'प्रदीप' प्रेस करने वाली मेज पर किताबें फैलाये बिजली के प्रकाश में बैठा पढ़ रहा था। दूसरे सभी कारीगर अपने-अपने घरों को जा चुके थे। प्रदीप दुकान पर ही रहता था। आज रविवार होने के कारण कालेज बन्द था। इसलिए उसने कहीं बाहर घूमने की अपेक्षा दुकान पर बैठ कर ही पढ़ना उचित समझा। दुकान का एक दरवाजा पूरी तरह बन्द था और दूसरे का किवाड़ थोड़ा सा खुला था। दुकान में रक्खी अधिकतर वस्तुएं उस अध खुले दरवाजे से बाहर की चीजों को उसी भांति निहार रही थीं जैसे नई नवेली दुल्हन घूँघट में से कनखियों से देखती है।

अचानक एक धक्के के साथ दोनों किवाड़ खुल गये। प्रदीप ने चौंक कर पुस्तक पर से नजर उठाई। सामने एक लड़की चुस्त लिबास

पहने, हाथ में 'परची' लिये खड़ी थी। प्रदीप को समझते देर न लगी कि कपड़े धुलने के लिए दिये गये होंगे, वही लेने आई है। वास्तविकता यह थी कि उसको कपड़े चाहियें थे। मगर वह दिल ही दिल में झुंझला उठा, भला भी कोई यह समय है कपड़े लेने का। जब इच्छा हुई लेने चल दिये। उसने अनमने भाव से परची पकड़ी दो-तीन मिनट तक विभिन्न परचियों को जो कपड़ों में लगी हुई थीं उनको उलट पुलट कर देखता रहा। फिर लड़की की ओर बढ़ाते हुये बोला:—

"क्षमा करियेगा! कपड़े आपको कल सवेरे मिल सकेंगे। इस समय तैयार नहीं हैं। धुल कर तो आ चुके हैं—लेकिन अभी प्रेस नहीं किये गये हैं। कल सुबह आप उन्हें मंगवा लीजियेगा।"

"लेकिन मुझे तो अभी चाहिएं। क्योंकि रात की गाड़ी से मेरे 'डेडी' बाहर जा रहे हैं। अगर प्रेस नहीं किये तो अब कर दीजिये, मुझे हर हालत में कपड़े अभी चाहिये।"

"आप सोचिये तो सही कि अब कपड़े प्रेस किस तरह हो सकते हैं! रात के नौ बज चुके हैं और 'इस्तरी' भी बिल्कुल ठण्डी हो चुकी है।"

उत्तर मिला—

गर्म कर लीजिये!"

पन्द्रह मिनट तक परस्पर विवाद होता रहा। आखिर तंग आकर उसने कोयले जलाये, मेज पर से किताबें हटा कर कपड़ा बिछा कर कपड़ों को 'नम' देकर प्रेस करना शुरू कर दिया। परन्तु उस समय उसकी मानसिक स्थिति अवर्णीय थी। लाल-लाल अंगारे जल तो रहे लोहे की प्रेस में, मगर प्रदीप को ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे कि वे अंगारे उसके हृदय मन, बुद्धि, एवं समस्त शरीर से चिपटे हुए हैं। क्रोध से उसका सारा शरीर प्रेस के कोयले की तरह जल रहा था। उसने अपने-आप पर हजारों फटकारें भेजीं कि वह दुकान में बैठा ही क्यों था। यदि उसे बैठना ही था तो दरवाजा पूरी तरह बन्द करके बैठता।

यह मुसीबत तो न उठानी पड़ती।

अभी एक कमीज प्रेस हो पाई थी कि लड़की के पिता आ गए। प्रदीप उनसे भली भांति-परिचित था। सड़क के अन्त में उनकी डाक्टर की दुकान थी और दुकान की ऊपर वाली मंजिल पर वह परिवार सहित रहते थे। आते ही लड़की से कहा—

"मोहना ! तम जाओ, मैं खुद कपड़े ले कर आता हूँ।"

फिर प्रदीप की ओर रुख करते हुए बोले—"तुम्हारी सर्विस बहुत गन्दी है। अगर समय पर कपड़े तैयार नहीं कर सकते तो लाँड्री बन्द कर दो तुम लोगों ने मजाक बना रखा है।"

प्रदीप सिर झुकाये प्रेस करता हुआ उसकी बातें सुनता रहा। वह चाहता तो उनका उत्तर दे सकता था। मगर वह खामोश हो रहा। क्योंकि यहाँ तो सुबह से शाम तक इसी तरह की बातें सुननी पड़ती थीं। और वह उन कड़वी बात सुनने का शायद आदी हो गया था। बीसियों ग्राहक हर रोज आकर कहते थे—

"कपड़े तैयार क्यों नहीं किए। काम नहीं होता तो दुकान बन्द कर दो। ये प्रेस ठीक नहीं हुई। कालर में मावा कम लगी है! कमीज में नील क्यों भरा है। पतलून की क्रीज ठीक नहीं बैठी, यह पाजामा क्यों फाड़ डाला" इत्यादि, प्रश्नों की बौछार उस पर कर दी जाती यद्यपि सारा दिन मालिक दुकान पर स्वयं भी रहता था लेकिन वह अशिक्षित था। प्रदीप को दूसरे नौकरों की प्रेस भी करनी पड़ती थी और परची भी काट कर देनी होती थी। इसके साथ साथ ग्राहकों की मीठी एवं कड़वी बातें भी सहन करनी पड़ती थीं। उनमें मीठी कम और कड़वी अधिक होती थीं? यह उसकी आदत बन चुकी थी। इसलिए कि उसको ढाई रुपये रोज मिलते थे। इसलिए कि वह प्रेसमैन था और इसलिए भी कि आधुनिक समाज में यह काम घटिया समझा जाता है।

प्रदीप ने कई बार महसूस किया कि अगर वह हर एक ग्राहक से उलझे, उनकी बेतुकी बातों का जबाब दे तो वह दो दिन में पागल हो

जाये । वह पागल होना नहीं चाहता था । इसलिए मौन रहता । ग्राहक आते, बातें करते और चले जाते थे । दिन गुजर रहे थे ।

प्रदीप ने कपड़ों का जोड़ा बनाया और डाक्टर साहब को दे दिया बिल दूसरे दिन अदा करने का वायदा कर के वह चले गए । प्रदीप थकान से अंगड़ाइयाँ लेता हुआ बिजली बुझा कर सो गया । यह उसकी मोहना से पहली मुलाकात थी एक लघु ताजराना मुलाकात ।

उस मुलाकात के बाद मोहना किसी न किसी बहाने से दुकान पर हर रोज आने लगी । एक बार उधार के पैसे देने आई, दूसरे दिन घर के धुले कपड़ों पर स्त्री करवाने आई । तीसरे दिन मैले कपड़ों की परची कटवा कर ले गई । उन सभी मौकों पर प्रदीप ने अनुभव किया कि मोहना उसकी ओर खिची चली आ रही है । एक अज्ञात शक्ति के इंगित पर पग आगे बढ़ रहे हैं और स्वयं को भी उसने मोहना के समीप पाया ।

दो दिन तक वह नहीं आई, ना मालूम क्यों ?

प्रदीप मुरझाये दिल से काम करता रहा । उसने जीवन में आज पहली बार अकेलापन अनुभव किया । जैसे कोई उसका साथ छोड़ गया हो । शाम को जब वह कालेज से वापिस लौट रहा था तो रास्ते में मोहना मिल गई । गर्मियों के दिन थे । रास्ता बाग में से होकर गुजरता था । लोग यथेष्ट संख्या में वहां घूम रहे थे ।

मोहना ने सरसरी तौर पर कहा—

"मैं तो थक गई ।"

"तो बैठ जाईये ।"

उसने सीधा सा जवाब दिया । दोनों हरी-हरी घास पर बिजली की रोशनी में बैठ गए । एक घंटा तक दोनों में बातें होती रहीं । प्रारम्भ में तो बातचीत का विषय राजनीतिक रहा । फिर मोहना ने कई प्रश्न एक साथ उसके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कर दिए ।

प्रदीप ने गम्भीरतापूर्वक उनका उत्तर दिया।

एक घण्टा पश्चात् दोनों एक दूसरे से पृथक हुए तो मोहना की आखों में प्यार एवं सहानुभूति के भाव झलक रहे थे और प्रदीप की आंखों में दीनता के डोरे थे। क्योंकि उसको अपने छोटे पेशे का ख्याल था मोहना के बाप की दौलत का ऐहसास था। वह एक धनवान पिता की बेटी थी। दोनों की राहें अलग थीं। मंजिलें पृथक थीं। यही गम उसको खाये जा रहा था। क्योंकि आधुनिक समाज में अमीर और गरीब की मुहब्बत की चर्चा तो क्या उसकी कल्पना करना भी असम्भव है। इसी लिये उसकी आंखों में अपने प्रति हीनता के भाव चमक रहे थे, उसके डोरे उभर रहे थे।

रात और दिन का संघर्ष होता रहा। जीवन का कारवां—जीवन पथ पर बढ़ता रहा। दोनों दुकान और दुकान के बाहर आपस में मिलते रहे। दिलों में प्यार का एक खामोश तूफान लिए—भविष्य में एक हो जाने की आकांक्षाएं लिए मिलते और अलग हो जाते। भविष्य का कार्यक्रम यही था कि प्रदीप एफ० ए० करने के बाद किसी दफतर में मुलजिमी करे—शेष इसके बाद निश्चित किया जायगा कि अगला कदम क्या हो।

सारा दिन प्रेस करता हुआ प्रदीप अपनी और मोहना की जिन्दगी के विषयमें गौर करता रहता साथ अपना काम करता रहता और मस्तिष्क के मिलने से पूर्व वह वर्तमान जिन्दगी पर संतुष्ट था। गरीबी का आभास तो पहले भी था मगर इसी प्रबलता से नहीं जितना कि उसके मिलने के बाद पैदा हो गया था। मोहना ने जहां उसको प्यार की सहानुभूति दी थी वहां अमीर, गरीब, मालिक नौकर, शासक एवं शासित को समझने की सामाजिक चेतना भी प्रदान की थी। उसको पूर्ण विश्वास हो चुका था कि निर्धनता में प्यार भयंकर गरल है और न ही धनवानों की दुनिया में प्राणदायिनी शक्ति है—अमृत है। शायद इसी बात को सम्मुख रखते

हुए उसनें एक बार मोहना से कहा था—

"मोहना । हम दोनों एक नहीं हो सकते ?"

"क्यों नहीं हो सकते ?"

उसने सीधेपन से जवाब दिया ।

"तुम जिन महलों में रहती हो वहाँ मेरी कल्पना शक्ति भी जाते हुए भयभीत हो उठती है फिर भला मेरी तो क्या हस्ती है ।'

वह रोदन भरे स्वर में उत्तर देती—"आप मुझे जब भी मिलते हैं दौलत के ताने देते हैं । डैडी दौलतमन्द हैं तो इसमें मेरा क्या दोष है ? मैंने तो न आज तक आपके सामने अपनी दौलत की शान को बघारा है और न ही कभी आपकी निर्धनता पर व्यंग कसा है ।"

"तुम्हारी सहानुभूति और प्यार के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ, लेकिन सामाजिक सत्यों को झुठलाया नहीं जा सकता । अमीरी और गरीबी एक कटु सामाजिक सत्य है इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता ।"

वह मां का स्नेह, बहन का प्यार और प्रेमिका की मोहब्बत अपने स्वर में उत्पन्न करके कहती…

"आप हिम्मत न हारिये, कोई न कोई मौका हाथ आ ही जायेगा कि बिगड़े काम बन जायेंगे ।"

"हो सकता है वह मौका बिगड़े कामों को और बिगाड़ दे । ऐसा मत कहिए ।" वह अपना कोमल हाथ उसके अधरों पर रख कर कहती । प्रदीप खामोश हो जाता ।

कहते हैं कि ताड़ने वाले कयामत की नज़र ही नहीं, बल्कि कयामत का दिमाग भी रखते हैं । प्यार यद्यपि पाप नहीं । मगर हमारे समाज में शादी से पहले लड़की का प्यार करना महापाप समझा जाता है । प्रतिदिन मोहना और प्रदीप का आपस में मिलना लोगों की दृष्टि से छिप न सका, ताड़ने वाले ताड़ ही गये । जरा सी बात का अफसाना

बना दिया। स्थान-स्थान पर दोनों के बारे में चर्चाएँ होने लगीं। जब ये बात मोहना के पिता डाक्टर साहब के कानों तक पहुँची तो वह सटपटाए। फिर अपने पर काबू न पाकर सूचना देने वाले आदमी पर बरस पड़े और कहा—

"तुम बकवास करते हो। ये खबर सरासर झूठी है। मोहना मेरी लड़की है, उसकी रगों में मेरा रक्त है। वह एक कमीने इन्सान से प्यार तो क्या, उससे बात तक नहीं कर सकती।"

लेकिन किसी ने ठीक ही तो कहा है कि मारने वाले का हाथ पकड़ा जा सकता है, मगर जबान नहीं। कल को बात अधिक बढ़ सकती है इसलिए उन्होंने पहले से ही मुनासिब समझा। ताकि समय पर कदम उठाया जा सके।

काफी कोशिश के बाद जब उनको मोहना और प्रदीप की गुप्त मुलाकातों का पता चल गया तो वह सिर पीट कर रह गये। उन्होंने शीघ्र ही इस सिलसिले की कार्यवाही करने का फैसला कर लिया। पहिला काम उन्होंने यह किया कि मोहना को उसकी मां के साथ अमृतसर अपने सम्बन्धी के पास भेज दिया। जाने का प्रोग्राम अकस्मात बना था। इसलिए वह जाती बार प्रदीप से न मिल सकी। जिसका उसको गम था। यह ख्याल करके उसने अपने दिल को ढाढस बंधाई कि वह अमृतसर पहुँच कर प्रदीप को लांडरी के पते पर पत्र लिखकर समस्त परिस्थितियों के विषय में बताऊँगी।

मोहना को गये अभी दो रोज भी न हुए थे कि पुलिस के दो सिपाही लांडरी पर आये और प्रदीप को थाने चलने के लिए कहा। प्रदीप पहले तो चकराया फिर अपने पर नियंत्रण करके पूछा—

"मामला तो बताइये क्या है?"

"तुम थाने चलो, वहीं सब पता हो जायेगा।"

प्रदीप काम छोड़कर उनके साथ थाने चला गया। वहाँ पहुंचने पर ज्ञात हुआ कि डाक्टर साहब ने उसके विरुद्ध चोरी की रिपोर्ट दर्ज करवाई है। आज ही सुबह उनकी सोने की जंजीर लगी घड़ी ड्राइंग-रूम से गायब हो गई है।

डाक्टर साहब का बयान है कि सवेरे प्रेसमैन प्रदीप उनके पास मैले कपड़े लेने आया था, यह शरारत उसी की जान पड़ती है और मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि घड़ी उसी ने चुराई है।

प्रदीप ने यह तो स्वीकार किया कि वह उनके घर से मैले कपड़े डाक्टर साहब के बुलाने पर लेने गया था। मगर यह आरोप सर्वथा गलत है कि घड़ी उसने चुराई है। वह कदापि इस प्रकार का घृणित काम नहीं कर सकता। उसने पुलिस इन्सपैक्टर के सामने अपनी ईमान-दारी की बीसियों घटनायें बयान कीं जब कि कितने ही लोगों के रुपये उसने मैले कपड़ों में से निकाल कर दिये थे। हजारों कसमें खाईं— किन्तु व्यर्थ। उसको हवालात में बन्द किया जा रहा था तो उसने देखा कि डाक्टर और इन्सपैक्टर दोनों मुंह में मुंह मिलाए कोई विशेष बातें कर रहे थे।

अभियोग चला पुलिस ने ये सिद्ध कर दिया कि चोरी प्रदीप ही ने की है और चोरी की घड़ी अपराधी के पास से मिल चुकी है।

प्रदीप आश्चर्यचकित था कि कब उसने घड़ी चुराई और कब उसके पास से बरामद हुई? यह क्या से क्या हो गया? उसकी सोचने समझने की समस्त शक्ति नष्ट होती जा रही थी और मस्तिष्क में विचारों का द्वन्द्व का युद्ध हो रहा था।

न्यायाधीश ने चोरी के अपराध में प्रदीप को छः मास की कड़ी सजा दी। सुनहले भविष्य में अन्धकार छा गया। जीवन की नई कोपलें मुरझा गईं।

"कैदी ?"

"हूँ ।"

"सो जाओ ।" यह पहरेदार की आवाज थी ।

प्रदीप ने टांगों पर से सिर उठाया ।

रात सिसक रही थी । विश्व के कण-कण में मौनता एवं अन्धकार का राज्य था । दो गर्म आँसू उसकी आँखों से निकल कर उसके गालों पर लुढ़क गये । अन्धकार अपने गर्भ में प्रकाश लिए चीत्कार करता हुआ ऊषा की किरणों से आलिंगन करने के लिए भागा जा रहा था ।

इन्सान या भेड़िया

दीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात् बस आई लेकिन भरी हुई थी। खड़े होने मात्र के लिए स्थान न था। सो मैं बस में लगे डंडे को पकड़कर खड़ी हो गई। पता नहीं कि मेरी शारीरिक दुर्बलता का अभ्यास कर अथवा किसी अन्य भावना के वशीभूत हो एक महाशय अपने स्थान से उठते हुए बोले:—

"आप बैठिये।"

यद्यपि मुझे उनका यह क्रम कुछ अखरा मगर फिर उनकी बैठने की शिष्ट प्रार्थना को मैं न टाल सकी और अधरों पर एक लघु कृत्रिम मुस्कान लाकर बैठते हुए बोली—

"धन्यवाद !"

मेरे इस शब्द के उच्चारण पर वह मुंह ही मुंह कुछ बोले जिस को मैं न सुन सकी।

ठीक उसी समय एक लड़की ने अपने बराबर बैठे साठ वर्षीय बृद्ध पुरुष के मुख पर चांटा दे मारा बस रुक गई। वृद्ध महाशय कह रहे थे—

"बेटी ! तुम तो मेरी बेटी के समान हो।"

लड़की ने जल कर उत्तर दिया, "अगर मैं तुम्हारी बेटी के समान हूं तो फिर तुम मेरी टांग पर हाथ क्यों फेरते थे ?"

बस में एक साथ कई कहकहे फूट पड़े। काफी झगड़े के पश्चात निर्णय हुआ कि बस को पुलिस-स्टेशन ले जाया जाय। पुलिस स्टेशन का नाम सुन कर लड़की सहम गई उसने इस प्रस्ताव का विरोध किया।

अंत में वृद्ध महाशय क्षमा याचना करते हुए बस से नीचे उतर गये ।
बस पुनः चल पड़ी ।

बस पुनः 'स्टैंड पर रुकी । अधिक मात्रा में लोग नीचे उतर गए ।
मेरी सीट पर बैठे भी दोनों व्यक्ति उतर कर चल दिए । अपना स्थान
मेरे हेतु रिक्त करने वाले महाशय मेरे समीप ही बैठ गए, यद्यपि बैठने
के लिए अन्य कई सीटें खाली पड़ी हुई थीं ।

कुछ क्षण पश्चात, उन्होंने धीरे से अपने पैर से मेरा पैर दबाया ।
मैंने करुणा एवं क्रोधमिश्रित दृष्टि से उनकी ओर देखा । वह मुस्कराए,
मन ग्लानि से भर उठा । गंतव्य स्थान पर पहुंचने की लालसा का त्याग
कर मैं मार्ग में ही उतर पड़ी । अभी कुछ पग ही चली थी कि पीछे से
एक आवाज आई ।

"रमा !"

मैंने घूमकर देखा । सामने मेरे कालिज की सहेली हेमलता खड़ी
थी ।"

मैंने एक साथ कई प्रश्न कर डाले । वह दौड़कर मुझसे चिपट गई ।
उसकी श्वास फूली हुई थी और आँखों से व्याकुलता प्रकट हो रही थी ।
मैंने उसका कारण पूछा तो उसने पीछे की ओर मुड़ कर एक भययुक्त
दृष्टि डाली । सामने एक लड़का कुछ दूरी पर खड़ा मुस्करा रहा था ।

"बात क्या है हेम ?"

"वह मेरा काफी देर से पीछा कर रहा है ।"

"हूं ।"

कह कर मैंने माथे में बल डाल कर जब उसकी ओर देखा तब उस
की मुस्कराहट और भी अधिक स्पष्ट हो उठी । मैं लज्जा कर रह गई ।
सामने 'फिलोरा रेस्टोरेंट था । हम दोनों उस ओर चल दीं ।

हम रेस्टोरेंट में बैठी चाय पी रही थीं कि एक साहब हमारे पास
आ कर बोले—

"क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ ?"

मैंने खाली कुर्सी को संकेत करते हुए कहा।

"आप वहाँ क्यों नहीं बैठ जाते ?"

वह उत्तर दिये बिना खाली कुर्सी की परिक्रमा करते हुए रेस्टोरेंट से बाहर चले गये। हेम मेरी ओर देख कर मुस्कराई। उत्तर में मैं भी मुस्करा पड़ी। मुझे मुस्कराता देख कर रेस्टोरेंट का मैनेजर मुस्कराया न जाने क्यों ?

हेम बोली—"फिलम देखोगी ?"

"दिखाओगी ?" मैंने घड़ी की ओर देखते हुए पूछा।

"हूं।"

"तो चलो !"

'सिनेमा हाऊस' पहुंची तो टिकट बन्द हो चुके थे। कुछ आदमी निरर्थक रूप से इधर-उधर घूम रहे थे। हमारे पहुंचते ही सब की आँखें हमारा परीक्षण करने लगीं। मानो हव दो साधारण स्त्रियाँ न हो कर संसार की कोई आश्चर्यजनक-अदभुत वस्तु हों जिनको देखने का सुअवसर उनको अपने जीवन में प्रथम बार ही मिला हो।

निराश वापिस लौटने लगीं तो एक बाईस वर्षीय युवक ने समीप आ कर पूछा—

"टिकट चाहिए ?"

"ब्लैक में।"

"हां।"

"नहीं चाहिए।"

"आप ले लीजिए। कुछ मत दीजिए।"

हेम ने कड़क कर कहा।

"शट-अप।"

वापिस आने लगीं तो पीछे से आवाज आई—

"गाली में भी मीठी गोलियों का मजा आ गया।"

हम सड़क पर चली जा रही थीं। फिर वही समस्या थी कि कहां जायें? मैंने निराश युक्त स्वर में हेम से पूछा, "हेम!"

"हूं।"

"अब कहाँ जायें?"

"जहाँ कोई मुस्करा देने वाला हो।"

उसने व्यंग किया।

"मैं उसके व्यंग पर खिलखिला कर हंस पड़ी। मुझे हँसता देख कर पटड़ी पर खड़े एक सरदार जी बोले, 'हंसदे पयेओ सोनिओ।"

उनके इस वाक्य पर पंजाब की शिष्टता मानो चीत्कार कर उठी हो।

बहुजन-प्रिय सड़क को छोड़ कर हम एक सुनसान सड़क की ओर घूम गए।

सड़क साफ-सुन्दर और-खुली थी। सहसा एक कार समीप आकर रुकी। कार को ड्राइव करने वाले सज्जन बोले।

"क्या मैं आपकी सेवा कर सकता हूं?"

"जी?"

"अगर आप कहें तो मैं आपको टिकट दे सकता हूं?"

उन्हों ने सिर की गांधी टोपी को आगे को सरकाते हुए दोबारा प्रश्न किया।

मैं बोली, "धन्यवाय।"

"आईये बैठिए, कोई फर्क नहीं पड़ता।"

"इस बात का निर्णय आप मत कीजिए।"

कार चल दी। दो सौ कदम की दूरी पर एक बुढ़िया ने सड़क के मध्य में खड़े होकर हाथ से कार को रोकने का प्रबल अनुरोध किया। मगर वह सज्जन कमाल फुर्ती से कार को यों भाग कर ले गये जैसे

कोई साइकिल सवार चालान के डर से सिपाही से बच निकलता है।

उन सज्जन की इस विशेषता पर हेम का समस्त कोमल शरीर झूम गया। पास से गुजरते हुए दो साइकिल सवारों में से एक ने उपदेश दिया—"झूमकर मत चलिए, वरना हमारा दिल भी झूम जायेगा।'

उनके इस उपदेश पर रमा का कोमल शरीर उस कटी हुई शाख की भाँति निस्पंद हो गया जिसे किसी ने क्रूरता से तेज यंत्र के द्वारा काट दिया हो।

हेम की इस दयनीय दशा को देख मैं सिहर उठी। सड़क की दोनों ओर खड़े पंक्ति-बद्ध वृक्षों का पात-पात मेरी उस सिहरन का भास कर मानों अट्टहास कर रहा हो।

लघु सी उस सुनसान सड़क को हमने द्रुतगति से शीघ्र ही पार कर लिया ने इर्विन हस्पताल के पास कुछ आगे जाकर—देहली गेट के चौराहे पर धातु निर्मित प्रतिमा की ओर संकेत करते हुए हेम बोली "रमा !"

"हूँ।"

"...ने इतिहास तो पढ़ा है।"

"...।"

"...रत के स्वतन्त्रता संग्राम में देहली प्रांत की स्त्रियों का क्या कोई सहयोग नहीं रहा ?"

"तुम कहना क्या चाहती हो ?"

वह मुस्कराई—जिसमें उदासीनता छिपी थी और फिर बोली

"आज उद्यानों में, चौराहों पर और अनेकों सार्वजनिक स्थानों पर स्वतंत्रता संग्राम में शहीद होने वाले अथवा उसमें योग देने वाले पुरुषों के कीर्ति स्तम्भ मूर्तियों के रूप में स्थापित किये जा रहे हैं। फिर स्वतन्त्रता संग्राम के नारी पात्रों की यह उपेक्षा क्यों ?"

बात कड़वी भी थी और सच्ची भी। मैं सहसा बोल उठी।

"आज तक नारी के बलिदानों का मूल्यांकन पुरुषों ने किया है।

वोट का हकदार कौन ?

आज लाला रामदत्ता की कोठी के बाहर विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य और प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। और लाला जी के जागने की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे थे। यद्यपि साढ़े दस बज चुके थे मगर अभी तक सो कर नहीं उठे थे।

अतः उनकी पत्नी ने नौकर से कहलवा कर लाला जी को उठाया। लाला जी ने सो कर उठने के बाद नौकर से कहलवाया कि लोग बातें धीरे-धीरे करें—क्योंकि शीघ्र जागने के कारण उनकी तबीयत परेशान हो गई है।

दो घण्टे के बाद सेठ जी कमरे से बाहर आये। सब लोगों ने सम्मान पूर्वक खड़े होकर उनका स्वागत किया।

बैठिए, बैठिए ! मुझे खेद है कि आप लोगों को कुछ समय तक मेरी प्रतीक्षा करनी पड़ी।"

लाला जी ने मुस्कराते हुए कहा और फिर उदास होकर बोले—

"क्या करूँ, सारी रात नींद नहीं आती। हाजमा खराब हो गया है। ठंडी जगह में रहने से प्रायः जुकाम लगा रहता है। काश ! मैं भी आपकी तरह खुशनसीब होता और मुझे भी आपकी तरह धूप तापने को मिलती। डाक्टरों का कहना है कि जिगर में कुछ खराबी है। बल्ड-प्रैशर की शिकायत मुझे दो साल से है। इधर काटनमिल के मजदूरों ने तीन रोज से हड़ताल कर रखी है। कहते हैं, मजदूरी अधिक दो। जब तुम हमारी मेहनत से हजारों रुपये कमाते हो तो फिर हमें भूखों मारने का तुम्हें क्या अधिकार है। हमारे लिए हस्पताल बनवाओ, जहाँ से हमें

दवा मुफ्त मिल सके। फिर कहते हैं—जब तुम ऊँची अट्टालिका में रहते हो तो कम-से-कम हमारे लिए कच्चे मकान ही बनवादो। अब आप ही बताएं कि मैं उनकी यह माँगें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। और यदि स्वीकार कर भी लूँ, तो उनको पूरा कैसे करूँगा। जबकि इस वर्ष केवल मुझे नौ लाख का फायदा हुआ है। और जिसका मैंने सोना खरीद कर स्टेटबैंक आफ अमेरिका में जमा कर दिया है। अब मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी तीन पत्नियाँ हैं। चार कुंवारी लड़कियां हैं, जिनका मुझे अभी विवाह करना है। मगर अपने पास फूटी कौड़ी तक नहीं है।"

फिर लाला जी ने ठंडी साँस भरी और बोले—

"यह तो मेरा दुर्भाग्य था कि मैं भारत में पैदा हुआ या पैदा किया गया। यहाँ के लोगों के दिलों में मेरे लिए तनिक भी सहानुभूति नहीं है तथा ये लोग मेरी विवशता को नहीं समझते। अगर मैं अमेरिका में होता तो इन हड़ताल करने वालों का खून पी जाता। फिर देखता कि हरामखोरों के साथ में कौन आवाज उठाता है। काश! यहाँ के लोग अपने पूर्वजों के कथनानुसार चलते। उनके आदर्श कितने सुन्दर थे कि यदि कोई तुम्हारी दाईं गाल पर चांटे मारता है तो तुम बाईं गाल भी उसके आगे कर दो। इसी तरह अगर कोई साहब कपड़े की ब्लैक करते हैं तो यह आपका कर्त्तव्य है कि आप उनका कारखाना बन्द होने पर उनको चीनी की ब्लैक करने का मौका दें। सुनहरी असूल तो यही है। मगर यहाँ का मामला ही बिल्कुल उल्टा है। ओह! माफ करना मैं तो अपना ही किस्सा ले बैठा। आप कैसे हैं, किस लिए आये हैं? यह तो पूछना भूल ही गया। खैर, कोई बात नहीं। अब मैं दफ्तर में बैठता हूँ आप बारी-बारी अन्दर आते जाइये।

यह कह कर लाला जी अन्दर दफ्तर में चले गये। उनके जाने के बाद एक नौजवान दफ्तर में दाखिल हुआ। और उसने विनम्र भाव से प्रणाम किया। लाला जी बोले—

"कहिये ! आप क्या खायेंगे ? कुछ पीयेंगे, कोई फल, चाय या नल का ठंडा पानी ?" सेठ जी ने दोनों हाथ जोड़ कर उसे कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए पूछा ।

"धन्यवाद ।"

नौजवान कुर्सी पर बैठते हुए बोला—

"मैं काम की बात करना चाहता हूं, लाला जी ! यह तो आप को मालूम ही है कि पिछले कई रोज से चुनाव लड़ने वाली पार्टियों की प्रचार की गति काफी तीव्र हो गई है हर एक पार्टी का प्रतिनिधि जनता से बड़े २ वायदे कर रहा है । और अपने प्रतिद्वन्दी को पराजित करने के लिए प्रत्येक मनुष्य उचित-अनुचित कार्य कर रहा है । लेकिन हमने अब तक न तो कोई जलसा किया है और न ही कोई जलूस निकाला है । क्योंकि मैं और मेरी पार्टी ऐसी बातों को अच्छा नहीं समझते । प्रचार का यह ढंग जन्ता के वोट हथियाने का कुत्सित प्रयत्न है । आज मैं स्वयं कनवैसिंग करने को आया हूँ ।

लाला जी ने जो एक अनोखे ढंग से अपने सिर को झटका दिया, और बोले—

"भई ! यह बात अपनी समझ में खूब आई । हम तुम्हें ही अपना कीमती वोट देंगे । तभी तो मैं भी कहूं कि कभी आपके दर्शन नहीं हुए वरना यहाँ तो हर रोज उम्मीदवार आते ही रहते हैं ।"

"किसके उम्मीदवार ......?" उसने धीरे से कहा ।

लाला जी ने क्रोध से कहा । "ओ बे ! बाबू ! क्या कहा तुमने ?"

'जी—बात यह थी कि मैं आपका मतलब नहीं समझा था । तो हाँ, आपने मुझे वोट देने का फैसला करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है । और मैं तो यहां तक कहूंगा कि आपने भूखी जनता पर बहुत बड़ी...क्या कहते हैं...कृपा की है ।" उसने बात को पलटने की कोशिश की तो उसकी हंसी निकल गई । बस फिर क्या था । लाला जी बिगड़ गए ।

"देखिए साब ! पहले आप यह बतायें कि आपकी तालीम क्या है ? यदि आप चुनाव में सफल हो गए तो आप क्या कुछ करेंगे ? और आज तक आपने देश के लिए कितनी कुर्बानियां की हैं ?"

"जनाब ! मैं एम० ए० पास हूँ। राजनीति और अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान रखता हूं। और अब एक देहाती स्कूल में पढ़ाता हूँ। अब रहा आपका सवाल कि अगर मैं कामयाब हो गया तो क्या करूँगा ? तो मालूम होता है कि अभी तक आपने 'इलैक्शनमैनीफैस्टो' नहीं पढ़ा। नहीं तो आपको यह सवाल करने की आवश्यकता न होती। खैर, कोई बात नहीं। अब मैं आपको चन्द मुख्य-मुख्य बातें बताये देता हूं। सब से पूर्व मैं गरीब बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध करूंगा। जिनके दिमाग अमीरों के आराम-परस्त लाड़लों से कहीं अधिक अच्छे होते हैं। मगर निर्धनता जिनको विकृत बना देती है। दूसरी बात जिसकी ओर मैं तुरन्त ध्यान दूंगा। यह कि देश की आर्थिक दशा को सुदृढ़ करना। आज मँहगाई से जनता का कचूमर निकल रहा है। जिसका मुख्य कारण सामाजिक विषमता है। मैं कानून के द्वारा इसको यानी विषमता को दूर करने का प्रयास करूँगा। जो लोग इसका विरोध करेंगे, उनको कठोर दंड दिलाऊँगा। तीसरा—हमारे नगर में सैकड़ों भिखमंगे मारे-मारे फिरते हैं। जिनमें ऐसे भी हैं जो काम कर सकते हैं। मगर बेकारी के कारण कुछ नहीं कर पाते। मैं उनके लिए 'पुअर-हाऊस' खुलवाऊं जहां रहने के साथ-साथ उनको करने को काम भी मिलेगा। चौथा—हमारे शहर की प्रायः सभी सड़कें टूटी पड़ी हैं। नगरपालिका का उसकी ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्शित करवाऊंगा। नगर में स्थान-स्थान पर गन्दगी के ढेर पड़े रहते हैं। उनसे विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं जो देशवासियों के स्वास्थ्य के मार्ग में बाधक हैं। मैं उनकी सफाई की ओर ध्यान दूंगा। आज-कल नई बस्तियों में बिजली नहीं दी जाती। तर्क यह दिया जाता है कि बिजली कम पैदा होती है। इसलिए नये कनैक्शन नहीं दिये जा

सकते। मगर नई-नई कोठियों को बिजली फौरन मिल जाती है। मैं पूछता हूं कि तब यकायक बिजली कहा से आ जाती है? यदि मैं सफल हुआ तो इन बस्तियों को बिजली के प्रकाश से प्रकाशमान कर दूँगा।

"छटा···छटा···"

"बस, रहने दो। मैं आपको एक भला आदमी समझता था।"

लाला जी ने अपने कानों पर दोनों हाथ रखते हुए—"छटा······ ऊंहु···मैं यह करूंगा। मैं वह करूंगा। बड़ा आया करने वाला।"

"लेकिन पहले मेरी बात तो सुन लीजिए। अभी तो मुझे अपनी कुर्बानियों के विषय में कुछ कहना है।"

"नहीं साहब! मैं अब कुछ नहीं सुनना चाहता। आप बस यहाँ से तशरीफ ले जायें। मैं अपना कीमती वोट किसी भी कीमत पर आपको नहीं दे सकता।"

"अच्छा सेठ जी! माफ करना, आपका बहुत कीमती समय नष्ट किया।"

उसने इतना कहा और चिक उठाकर बाहर निकल गया।

उनके चले जाने के बाद एक और साहब धोती बाँधे, शरीर से वस्त्रहीन गले में हारमोनियम डाले अन्दर आये। जिन्हें देखते ही सेठजी सटपटा कर बोले—

"ओह, भिखमंगों ने नाक में दम कर रखा है। वह ठीक ही कहता था कि पूरहोज (पुअर हाऊस) बनाने चाहिएं। तभी तुम बदबख्तों से छुटकारा मिल सकता है। जाओ बाबा, माफ करो। किसी और का दरवाजा खटखटाओ। मेरे पास टूटे हुए पैसे नहीं हैं।"

"लाला जी! मुझे भी कुछ कहने दीजिए।"

उसने नम्रता पूर्वक कहा। "भई! मेरे पास समय नही हैं। आखिर तुम लोग इतने जिद्दी क्यों होते हो। यह लो रुपया और पौने सोलह आने वापिस करो।"

सेठ जी ने एक खोटा रुपया जेब से निकाल कर मेज पर फेंकते हुए कहा ।

"अबे ! उठा ले मेरा मुँह क्या देखता है ।"

वह कुछ देर तक निस्तब्ध खड़ा रहा । फिर साहस करके बोला ।

"मैं भिखारी नहीं हूँ । मैं तो म्युनिस्पल कमिश्नर हूँ ।"

ऐं............! म्युनिस्पल कमिश्नर !" लाला जी चौंक पड़े ।

"जी हाँ, म्युनिस्पल कमिश्नर । और अबका बार लोक सभा के लिए आपके क्षेत्र से खड़ा हुआ हूं ।"

"खड़े हुए हो तो बैठ जाओ मैं क्या करूँ ?"

वह कुर्सी पर बैठकर दर्द भरी आवाज में हारमोनियम को लालाजी के मेज पर रखते हुए बोला ।

"ऐसे मत कहिए, सेठ जी ! मैं तो बड़ी २ आशायें लेकर आपके पास आया हूँ । मैंने देश के लिए अगरचे कोई सेवा नहीं की मगर करने के लिए हर वक्त तैयार रहता हूँ । भगवान कसम ! जब से मैंने बीड़ी बेचना छोड़कर म्युनिस्पल कमिश्नरी इख्तयार की है । लोग मेरे सारे खानदान को बीड़ी वाले की बजाय मोटर वाला कहकर पुकारने लगे हैं । अब मेरे पास नकद पाँच मोटरें हैं, तीन कोठियां नई दिल्ली में हैं । और एक कोठी शिमले में बन रही है । इधर मैं काटन फिलोर मिल का चीफ डायरेक्टर हूं लाला राम दत्ता जी ! अभी मेरे दिमाग में बड़े-बड़े नक्शे हैं मैं कुछ देर और देश की खिदमत करना चाहता हूं । क्योंकि मेरी धरती माता मुझे पुकार रही है । इसलिए मुझे अपना कीमती वोट दीजिये । आपको मेरी शिमला वाली कोठी की कसम ! मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि अगर मैं कामयाब हो गया तो उन तमाम आदमियों को गोली मरवा दूँगा जिन्होंने आप के कारखाने में हड़ताल कर रखी है आपकी कोठी के सामने 'यूकलिपटस' के वृक्ष लगवा दूँगा । जिसे देखकर लड़कियाँ आप पर आशिक हो जायेंगी ।"

"सच ?"

सेठ जी खुशी से उछल पड़े ।

"हाँ, लाला जी ! खरे सोलह आने सच । और सुनिये । ब्लेक मार्किट की खुली छुट्टी, यानी आप को अपने कारोबारी मामलात में पूरी आजादी होगी । आप पर से उन तमाम टैक्सों को हटवा दूँगा जो आप पर लागू हैं ।"

"भई ! फिर तो रंग ही लग जायेगा । देखो आजाद हिन्दुस्तान में हमें भी तो ब्लैक करने की आजादी होनी चाहिए । क्यों ठीक है न ?"

"जी, बिल्कुल ठीक ।" उसने लाला जी की बात का समर्थन किया ।

"अच्छा मोटर वाला आपकी तालीम कहाँ तक है ?"

वह खिसियानी हंसी हंस कर बोला—

"अजी ! तालीम की क्या पूछते हो । बस यूं समझ लीजिए कि अपने दोनों "बन" पहली जुमात तक पढ़े हुए थे ।"

इस पर लाला जी ने एक ठहाका लगाया और बोले—

"बहुत खूब, तुम भी अपने सगे भाई निकले । अच्छा यह तो बताओ कि यह बाजा अपने साथ तुम क्यों उठा लाये हो ?"

"आपका मतलब इस हारमोनियम से है । यह मेरे मित्र की निशानी है । हम दोनों इसे बजाकर बाजार में बीड़ियाँ बेचा करते थे । एक रोज वह मुझे सोया छोड़ कर चला गया । तभी से उसकी निशानी गले से लगा रखी है ।"

लाला जी कुर्सी से उछल कर उससे चिपट कर बोले—"तुम्हारा नाम डी० एस० बीड़ी वाला है ?"

"जीहाँ । मगर आपको यह क्योंकर मालूम हुआ ?" उसने विस्मय से पूछा ।

"भई ! मैं तुम्हारा वही बीड़ाचन्द पैसे वाले के रूप में ।"

"आह ! तुम ! यार बिल्कुल बदल गये हो ।"

"और तुम भी तो बिल्कुल बदल गये हो ।"

"यार मजाक छोड़ो । मुझे तुम से बड़ा रंज है । मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था कि तुम मुझी को सोता छोड़ आये ।"

"यार यह एक लम्बी कहानी है । फिर कभी बताऊँगा । अब तो यही चाहता हूँ कि हम आज वही पुराना गीत गायें ।"

इतना कहने के पश्चात लाला जी ने बाजा उठाकर गले में डाला और दोनों एक स्वर में गाने लगे ।

सौ नम्बर की बड़ी भाई ।
बड़ी ही लज्जत वाली है ।।
बढ़िया तम्बाकू इस में डाला ।
लाखों में निराली है ।।

जब यह आवाज बाहर पहुँची तो एक नारा लगा।

वोट का हकदार कौन ?

सेठ जी ने दफ्तर की खिड़की से सिर बाहर निकालते हुए ऊँची आवाज में कहा—

"डी० एस० बीड़ी वाला, नहीं,···नहीं मोटर वाला ।"

विश्वास और धोखा

"रामू !"

"जी ! बीबी जी ।"

"कहाँ थे तुम ?"

"बीबी जी ! कार साफ कर रहा था ।"

"हूं ! तुम अन्दर जा कर कमरा साफ करो मैं बाजार से सामान खरीद कर जल्दी ही लौट आऊंगी ।"

रामू के चले जाने बाद मैं कार में बैठी और स्वयं ही ड्राइव करने लगी । कनाट प्लेस पहुंच कर आवश्यक चीजें खरीद कर जब मैं घर को जाने के अभिप्राय से कार की ओर बढ़ी तो अचानक मुझे ऐसा भय हुआ जैसे कि मैं कुछ भूले जा रही हूं ।

ओह ! सहसा मेरे मुख से निकल गया और मैं पुन: 'फैंसी स्टोर' की ओर मुड़ी । दुकान ने अन्दर दाखिल हुई तो सेल मैन ने पूछा । "फरमाइये क्या दिखाऊं ?"

"आप के पास 'इवनिंग प्रेम सेंन्ट है ?"

"जी हाँ ।"

दूसरे ही क्षण 'इवनिंग प्रेस सेट' की शीशी काउन्टर पर मेरे सामने पड़ी थी । मैंने कीमत पूछी ।

"पन्द्रह रुपये दस आने ।"

मैंने सौ रुपये का नोट पर्स से निकाल कर दे दिया । सेल्समैन कुछ क्षण तक नोट को पैनी दृष्टि से देखने के बाद बोला "बदल दीजिये ।"

"क्यों ? क्या यह नकली है ?"

उसने नम्र स्वर में उत्तर दिया—"यह मैं नहीं कह सकता लेकिन मुझे शक है।"

"आप विश्वास कीजिए—यह सही है।"

"माफ कीजिए। विश्वास और धोखे में एक कदम का फासला है।" उसने हिन्दी की एक पुस्तक जो कि उसके हाथ में थी घुमाते हुए जवाब दिया।

उसके इस उपदेशात्मक वाक्य पर मैं जल ही तो गई। विवश होकर नोट काउन्टर से उठाया और जाने लगी तो अकस्मात मेरी नजर उस पुस्तक पर जा पड़ी जिसके टाईटिल पर लिखा था—"नंग्न सत्य।"

हूं। आज-कल के साहित्यकारों ने नौकरों का दिमाग बिगाड़ कर रख दिया है। बात २ पर वे अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने लगते हैं।

दुकान से निकल कर मैंने कार स्टार्ट की और घर की ओर रवाना हो गई। कार तेजी से सुनसान सड़क पर भागी जा रही थी। यकायक भागती कार को मुझे ठहराना पड़ा। खिड़की से सिर निकाल कर उस लड़के के मुख और कपड़ों का निरीक्षण किया। जिसने सड़क के बीच में खड़े हो कर हाथ के इशारे से कार रुकवाई थी। पहली दृष्टि में तो मस्तिष्क में यह विचार आया कि एक चाँटा कार से उतर कर उसके मुंह पर दे मारूं मगर उसकी बड़ी २ आंखें पतला मासूम सा चेहरा देख कर मैंने अपना इरादा बदल दिया लेकिन मैंने तीखी आवाज में पूछा।

"क्या बदतमीजी है! देखते नहीं कि यह टैक्सी नहीं, प्राईवेट कार है।"

मेरी इस बात को सुन कर वह सहम सा गया और उसकी मोटी आँखों में आँसू तैरने लगे। उसकी यह दशा देखकर मेरा हृदय पसीज गया मैंने अबकी बार नम्र स्वर में पूछा—"क्या बात है काका! तुम क्या चाहते हो?"

उसने हाथ में पकड़ी हुई दवा की शीशी को दोनों हाथों से मसलते

हुए कहा—

"जी ! मेरे पिता जी सख्त बीमार हैं। मुझे विलसन रोड जाना है। आप मुझे वहाँ तक छोड़ दीजिए आप की बड़ी मेहरबानी होगी।"

मुझे स्वयं विलसन रोड से होकर घर पहुंचना था। अनायास ही किसी अज्ञात भावना के वशीभूत होकर मैंने कहा। "पिछली सीट पर बैठ जाओ।"

वह पिछली सीट पर बैठा था। आगे कार में लगे शीशे में उस की बड़ी २ आखों को मैं देख रही थी। आप विश्वास कीजिए मुझे जीवन में अनेकों सुन्दर आंखें देखने का अवसर मिला है लेकिन उसकी आँखें देख कर प्रथम बार मेरा हृदय मचला था।

विलसन रोड आई और वह उतर कर चल दिया। जाती बार उनने केवल इतना कहा।

"धन्यवाद !"

कोठी के दरवाजे पर मैंने कार रोकी। रामू बाहर ही खड़ा था। कार की खिड़की खोल कर उतरते हुए मैंने रामू से कहा—"कार से सामान निकाल कर अन्दर ले आओ।"

अभी कुछ पग ही चली थी कि मुझे अपना शरीर हल्का सा प्रतीत हुआ। मैं वापिस कार की तरफ घूमी। रामू बाजार से क्रय की हुई सारी चीजें कार से निकाल कर अपने दोनों हाथों में लिये खड़ा था। मैंने उसके हाथों में पकड़ी चीजों को गौर से देखा और फिर कार के अन्दर दृष्टि डाली। दवा की शीशी पिछली सीट पर पड़ी थी और मेरा पर्स गायब था।

दो बड़ी २ आँखें और सेल्समैन का वह वाक्य 'विश्वास और धोखे में एक कदम का फासला है' मेरी कल्पना में नृत्य करने लगी।

आत्महत्या

आज का ताजा अखबार पढ़िये।

नव भारत टाइम्स, विश्वामित्र, हिन्दी का दैनिक समाचार पत्र आ गया।

देहली स्टेशन पर एक नौजवान की गाड़ी से टक्कर हो गई! आज का समाचार।

जन-सत्ता आ गया।

वीर अर्जुन आ गया।

हिन्दी समाचार पत्र पढ़िये।

देहली स्टेशन पर एक भीषण दुर्घटना। देहली के समाचार!

नव भारत टाइम्स आ गया!

आज का ताजा अखबार पढ़िए।

समाचार-पत्र विक्रेता इधर से उधर और उधर से इधर तेजी से दौड़ कर अखबार बेच रहे थे। समाचार पत्रों का क्रय-विक्रय वेग से चल रहा था।

चतुर्दिक प्रबल तिमिर का साम्राज्य था, रजनी किसी सुन्दरी के कुटिल कुन्तल की भाँति कालिमामय थी। नील गगन के आंचल में राकेश छिप गया था, तारों ने रजनी की गोद में मचलना छोड़ दिया था। वर्षा तीव्र गति से हो रही थी, सड़क काली नागिनी की भाँति बल खाती दूर—बहुत दूर चली गई थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों ब्रम्हाँड के कण-कण में मौनता का अखंड साम्राज्य स्थापित हो चुका हो।

वह बालकोनी में खड़ा मानव जीवन पर विचार कर रहा था। जो श्रमिक और पूंजीपति, किसान और क्षेत्रपति, शोषक और शोषित

धनवान और निर्धन दो वर्गों में विभक्त होकर रह गई थी । यदि एक के आँचल में जगत का वैभव भरा है तो दूसरे के जीवन में दर्द, पीड़ा वेदना, कसक विद्यमान है । यदि एक के जीवन में उल्लास है तो दूसरे के जीवन में विषाद का भयंकर सागर प्रवाहित है । एक स्वामी है दूसरा सेवक, एक संकेतों में आदेश प्रस्तुत करता है तो दूसरा मस्तक झुका कर उन आदेशों की पूर्ति कर देता है । एक कोमलता, मधुरता, धन-वैभव का यदि अधिकारी है तो दूसरा कठोरता, निर्दयता एवं दीनता का रक्षक है । एक के जीवन में उमंग और उल्लास की सृष्टि होती है तो दूसरे के अंतःकरण में क्षुधा की अग्नि जन्म लेकर विकास की पराकाष्ठा तक जा पहुंचती है ।

इतनी विषमता ?

यह अत्याचार है ।

यह अन्याय है ।

वह सोचते-सोचते व्यग्र हो उठा । उसका सारा शरीर काँपने लगा, क्रोधवश उसने अपना आधा अधर दाँतों के नीचे दबा लिया ।

शनैः शनैः उसमें फिर परिवर्तन हुआ । वह पुनः अपनी पूर्ववत् स्थिति पर आ गया । उसने जीवन की वास्तविकता को एक बार दार्शनिक पद्धति पर पुनः हल करने का प्रयत्न किया । और वर्तमान वर्ग-भेद की समस्या पर चिन्तन करने लगा ।

"क्या है एक दीन-हीन क्षीण-श्रमिक का जीवन ? भूख, बेकारी, निर्धनता, क्या यही मानव का जीवन है ? सर्दी हो तो सिसकते रहो, गर्मी हो तो तड़पते रहो । कुछ हो, पशु से भी निकृष्ट । लेकिन मानव का विकास भी तो पशु से ही हुआ है । आज से हजारों वर्ष पूर्व जब वह जंगलों में रहता था, वृक्षों पर रातें गुजारता था, पत्तों से शरीर ढाँपता था । यदि आज का मनुष्य क्षण भर में ही अपने स्वार्थ के लिए पशु वृत्ति का प्रदर्शन कर देता है तो इसमें अत्युक्ति ही क्या है ।"

किन्तु अकस्मात उसके विचारों में परिवर्तन हुआ ।

पशु. ....पशु आधुनिक मनुष्यों से कहीं अच्छा है । उनमें धर्म के नाम पर युद्ध नहीं होते, वहाँ धनवान और निर्धन का अन्तर नहीं है आये दिन हमारी तरह विश्व युद्धों की विनाशता को स्वयं निमन्त्रित नहीं करते । गत वर्षों में मानव ने पंजाब और बंगाल आदि में दानवता का जो भीषण रूप दिखाया है, क्या वह कुछ कम प्रशंसनीय है ?

वह न मालूम कब तक इन विचारों की दुनिया और संघर्ष में मग्न रहता कि बाहर सरकारी घड़ी ने टन-टन करके बारह बजने की सूचना दी, और वह शैय्या पर आकर सो गया ।

'निर्मल' ने बाल्यावस्था से ही जीवन की विभीषिका देखी थी । अल्प आयु से ही उसे जीवन के कटु अनुभव थे और बचपन से ही उसके जीवन में कठोर सत्य का सम्मिश्रण रहा । अभी २२वर्ष की आयु ही थी कि क्रमशः माता-पिता नें संसार से नाता तोड़ लिया । उसके लिए यह दुःख कम न था किन्तु वह संसार में जीना चाहता था अतः वह यह वज्रपात भी सहन कर गया । उसने शिक्षा का क्रम जारी रखा । रातों काम किया, बच्चों को पढ़ाया, उससे जो आय हुई उससे अपना जीवन निर्वाह किया अनेकों कठिनाइयां और कष्टों के पश्चात उसने बी० ए० के अन्तिम वर्ष में प्रवेश किया । परन्तु उसी समय कांग्रेस ने १९४२ का असयोग आंदोलन छेड़ दिया । जिसमें क्रियात्मक कार्य करते हुए निर्मल को भी पकड़ लिया गया । उसे पांच वर्ष की सजा मिली ।

देश स्वतंत्र हुआ । निर्मल भी मुक्त कर दिया गया । उसे अपनी शिक्षा सम्बन्धी कोई चिंता नहीं थी कि शिक्षा अधूरी रही बल्कि इस बात का हर्ष था कि अब हम स्वतन्त्र हैं, भारत माता के कर-कमलों में पड़ी शताब्दियों की लौह शृंखलायें टूट चुकी हैं, हमारी अपनी सरकार बनेगी, जो देश को अधिक सुखपूर्ण बना सकेगी । किन्तु यह उसकी कल्पना मात्र थी । कारागार से बाहर निकल कर जब वह आया तो

उसने देखा कि अत्यन्त भूख बेकारी, गरीबी सुरसा के मुख की भाँति बढ़ रही है। धर्म के नाम पर दो वर्गों ने जो भीषण नर संहार किया है उससे देश विभक्त होकर जीर्ण-शीर्ण हो चुका है। लोग जगह-जगह पशुओं की भांति सड़कों पर पड़े हुए हैं। अन्न, वस्त्र, मकान आदि जीवन सम्बन्धी सभी वस्तुओं का अभाव हो चुका है।

निर्मल की व्यक्तिगत आर्थिक दशा तो पहले ही कुछ ठीक न थी। जेल जाने से तो उसमें और भी वृद्धि हुई। अतः उसके हृदय में देश-सेवा और सामृहिक मानवता के विकास की जो भावना थी उसको कुछ देर के लिए स्थगित कर दिया। पहले वह अपनी दशा को सुधारना चाहता था। वह यद्यपि बी० ए० न कर सका था फिर भी उसे आशा थी कि कहीं न कहीं कार्यालय में अवश्य काम मिल जायेगा। निर्मल अनेकों कार्यालयों में गया, प्रत्येक सरकारी विभाग में घूमा, उच्च सरकारी अधिकारियों को अपनी असहाय और दयनीय अवस्था से परिचित करवाया। किन्तु उसको कहीं भी काम न मिल सका। अन्ततः उसने एक साबुन बनाने के कारखाने में काम करना आरम्भ कर दिया। जो उसको अनथक परिश्रम के पश्चात उपलब्ध हुआ था। पर वहाँ से भी काम बन्द हो जाने पर उसको काम छोड़ना पड़ा। चार साल तक कभी कहीं काम मिला, कहीं नहीं। कभी भोजन किया कभी भूखों हीं सोना पड़ा। दिन अति विकल अवस्था में व्यतीत कर दिए और अब भी कई मास से वह बेकार था। इस बेकारी निर्धनता और समाज में व्याप्त विषमता ने उसको चिंतन शील बना दिया था। वह घन्टों एक स्थान पर खड़े होकर जीवन के विषय में सोचता और आज रात्रि को भी वह इन विचारों में मग्न था।

रात्रि को दीर्घ काल तक जागने पर प्रातःकाल वह शीघ्र न उठ सका, साथ ही उसको काम भी क्या था जो शीघ्र उठता। अतः उसने पड़े-पड़े ९ बजा दिए। प्रत्येक दिन की भाँति आज भी वह तैयार होकर काम ढूंढ़ने निकला। अभी कुछ पग ही बढ़ा होगा कि आवाज आई।

बाबू साहब ! आज ग्यारह तारीख है याद रखियेगा आज सन्ध्या तक ।

आवाज क्या थी मानों गोली थी जो कानों के मार्ग से होती हुई हृदय में घुस गई । उसको क्रोध तो आया कि उठाकर उसको नीचे पटक दे किन्तु वह ऐसा न कर सका एक विचार था जो आया और चला गया वह इस "ग्याहर तारीख" के अर्थ से अच्छी भाँति परिचित था । पांच मास का किराया हो गया था, आज देने को कहा था । साठ रु० से ऊपर बनते थे लेकिन उसकी जेब में तोउतने पैसे भी नहीं थे। "निर्मल" को आशा थी कि निश्चित अवधि तक किराया अदा कर दूंगा किन्तु काम न मिलने के कारण वह अपने इस उद्देश्य में सफल न हो सका । जाते हुए निर्मल ने मालिक मकान को "जी हाँ, जी हाँ, मुझे खूब याद है ।" वाकई कह कर चुप कर दिया और मकान से नीचे उतर आया ।

"यदि संध्या तक किराया न मिला तो तुम्हारा सामान बाहर फैंक दिया जायेगा ।" मालिक मकान की दी गई यह धमकी उसके प्राण खुश्क कर रही थी । अदालती कारवाई से तो वह इतना चिंतित नहीं था जितना बाहर फैंकने की बात से व्यग्र हो रहा था । निर्मल ने बाजार में चलते-चलते योजना बनाई कि शाम तक इतने रु० तो मिलने कठिन ही नहीं असम्भव हैं । क्योंकि कोई उसका इतना घनिष्ट परिचित ही नहीं जो इतने रु० दे सके, अतः आज दिन भर कहीं काम खोजा जाये या तो उनसे कुछ रु० पूर्व ले लिए जाए अथवा मालिक मकान को साथ लेजाकर बात करा दीजाय कि इस मास के अन्त तक सब रुपया दे दूंगा ।

इसी उद्देश्य को लेकर अन्य दिनों की अपेक्षा आज उसने काम प्राप्त करने के लिए अधिक श्रम किया । समस्त दिन उसने इसी कोशिश में में व्यतीत कर दिया कि कहीं कार्य मिले । किन्तु वह असफल रहा ।

संध्या हो चुकी थी, निर्मल निराश-निमग्न दिन भर का भूखा धीरे-धीरे घर की ओर आ रहा था । उसका हृदय बैठा जा रहा था मानों आज कोई भीषण घटना घटने वाली हो । उसका वज्र हृदय

आज तक कठोर प्रहार सहता आया था, अब भी उसमें महाशक्तियों को चुनौती देने की क्षमता शेष थी। पर न जाने क्यों घर पर मालिक मकान के द्वारा किराया न देने पर होने वाले अपमान, उपेक्षा और तिरस्कार की कल्पना कर उसका समस्त शरीर कम्पित हो उठा। अब वह घर से थोड़ी ही दूर था।"

"निर्मल भैया किधर जा रहे हो ?

एक मृदुल और कोमल स्वर ने उसको सम्बोधित किया।

ओह ! निर्मल ने सिर उठाकर सामने देखा। उसके साथ के कमरे में रहने वाली युवती 'रजनी' सामने खड़ी थी।

"रजनी तुम ! तुम यहाँ क्या लेने आई हो।

"भैया मैं तो सामन खरीदने आई थी तुम आज सारा दिन कहाँ रहे, तुम्हारे साथ तो आज घोर अन्याय हुआ।

"क्यों ?" निर्मल के स्वर में कंपन थी।

मालिक मकान ने तुम्हारा सारा सामान ताला तोड़ कर बाहर निकाल दिया और तुम्हारा कमरा एक बंगाली को १००० रुपये लेकर दे दिया।"

"हूँ।" कह कर निर्मल आगे चल दिया।

रजनी बाजार की ओर चली गई।

निर्मल इस घटना को रजनी द्वारा सुन कर अर्धवंक्षिप्त सा हो गया, उसका सिर चकराने लगा, उसकी आँखों के सामने अन्धकार छा गया। जिस भयंकर घटना का उसे भय था, वही घटना घटी। इस अपमान से उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी, उसका हृदय आज के तिरस्कार से उत्पीड़ित हो गया। वह घर जाने की अपेक्षा किमी महा-शक्ति के इंगित पर परिचालित होता हुआ स्टेशन की ओर चल दिया। उसकी समस्त सदवृतियों ने असदवृतियों का रूप ग्रहण किया, भयंकर एवं भीषण भावनाओं का अविर्भाव उसके हृदय में हुआ। साधारण अवस्था में हृदयबुद्धि [एवं मन का जो संतुलन रहता है वह अब

बिलकुल उसमें समाप्त हो चुका था, भीमाकार मनोवृतियों के नियंत्रण में होकर वह प्लेटफार्म पर पहुंच गया।

स्टेशन पर भीषण जन-कलरव हो रहा था, गाड़ी आने वाली थी। निर्मल सिर झुकाए किसी विभत्स विचार का निर्णय कर आगे सिगनल की ओर तीव्रगति से अग्रसर होता रहा।

दूर से चीत्कार करती, आस-पास की समस्त वस्तुओं को सावधान रहने हेतु उच्च स्वर से विसल देती गाड़ी आई। निर्मल लाईन के मध्य में सिर झुकाए बैठा था।

अकस्मात एक चीख वायु में मुखरित हुई और गाड़ी के भीमकाय पहियों में विलीन हो गई। निर्मल के शरीर के टुकड़े होकर वायु में उछले और लाईन पर बिखर गये।

दूसरे दिन—

अखबार बेचने वाले चीख-चीख कर कह रहे थे।

आजका ताजा अखबार पढ़िए।

देहली स्टेशन पर एक नौजवान की गाड़ी से अकस्मात टक्कर हो गई।

आज का समाचार-पत्र पढ़िए।

देहली स्टेशन पर भीषण दुर्घटना!

आ गया ताजा अखबार जन-सत्ता, विश्वामित्र, नव-भारत टाइम्स आ गया।

ताजा अखबार पढ़िए।

रात अन्धेरी है

साहब फर्मा तैयार है।

ठीक है, प्रेस में जाकर दे आओ।

आप देख लीजिए।

मैं देख चुका हूँ, तुम जा सकते हो?

कम्पोजीटर के चले जाने के बाद मैंने दीवार पर लगी घड़ी पर नजर डाली। घड़ी की दोनों सुइयाँ आखिरी निशान पर जाकर खड़ी हो गई थीं। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे बिल्कुल उठ ही चुकी हैं, परन्तु वास्तव में वह चल रही थी। बिलकुल वैसे ही जिस तरह जीवन का काफिला धीरे-धीरे मौत की ओर बढता रहता है लेकिन हम उसकी रफ्तार का अनुभव नहीं कर सकते। इसी तरह दिन और रात के चौबीस घण्टों मे कई बार ये घड़ी की सुइयाँ अपनी जगह से हट कर चिन्हों के चारों ओर घूमती रहती हैं किन्तु जब भी आप उनकी ओर दृष्टि पात करें वे आपको अपने स्थान पर जड़ एवं स्थिर नजर आयेंगी।

समाचार-पत्र का विशेषांक निकल रहा था। अतः एक कई सप्ताह पूर्व ही से कार्य प्रारम्भ हो गया था। यही कारण था कि फार्म तीन बजे तैयार होने के स्थान पर एक बजे ही पूरा हो गया था। मैंने सिगरेट सुलगाया और दफ्तर की सीढ़ियाँ उतरता हुआ सड़क पर आ गया। सड़क बिल्कुल शून्य थी और रात किसी यमराज के दृश्य की भाँति भयंकर एवं अन्धारमय थी, किन्तु आकाश में झिलमिलाते तारे किसी शाँति प्रिय व्यक्ति की भाँति चमक रहे थे जो जग के धूंए में भी शाँति का दीपक जलाने का प्रयत्न करता है।

पहले की भाँति आज भी मैंने सुनसान सड़क के कई चक्कर काटे और कई सिगरेट फूंक डाले। चाय पीने के अभिप्राय से जब मैंने कदम रैस्टोरैन्ट की ओर बढ़ाये तो नगर पालिका की घड़ी ने दो बजाये और उसकी आवाज वायु के वक्षस्थल को चीर कर कानों के मार्ग के हृदय में प्रविष्ट हो कर इस भाव को जगाने में सफल हो गई कि शीघ्र चाय पीने चलो, दो बजे के बाद रैस्टोरैन्ट बन्द हो जायेगा और कहीं तुम्हें निराश ही लौटना न पड़े और मैं निराशा से उतना ही घबराता हूँ जितना कि राह चलती लड़कियाँ उद्दण्ड लड़कों से घबराती हैं।

रैस्टोरैन्ट में प्रविष्ट हो तथा एक 'कप चाय का आर्डर देकर जब मैं मेज के पास रखी कुर्सियों में से एक पर बैठने लगा तो मेरी दृष्टि कोने में सिर झुका कर मेज पर समाचार-पत्र पढ़ते एक व्यक्ति पर जाकर रुक गई। दाढ़ी बढ़ी हुई, पतलून और कमीज की शिकनें बूढ़े चेहरे की झुर्रियों की भाँति उभर कर उसके संघर्षमय जीवन एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का बोध करवा रही थीं। मेरे अन्दर दाखिल होने की पग-ध्वनि सुनकर उसने सिर ऊपर उठाया। मेरे मुख से निकल गया—

"अरे! प्रेम तुम! तुम यहाँ···कैसे ?"

दूसरे ही क्षण हमारी छातियाँ यों मिल गईं जैसे समुद्र की व्याकुल लहरें किनारे से मिलती हैं। जब हम एक दूसरे से प्रथक हुये तो प्रेम के अधरों पर मुस्कान की एक मिटती हुई रेखा नाच रही थी। ऐसा ज्ञात होता था जैसे मुस्कराये हुए एक लम्बा समय व्यतीत हो चुका है और यह अधरों पर मुस्कान की मिटती हुई रेखा को तो उसने जबरदस्ती होठों पर ला केवल मेरा दिल रखा है या काफी समय बाद मिलने के लिए अपनी शिष्टता का परिचय दिया हो, ताकि मैं उससे रुष्ट न हो जाऊं।

चाय आई। हमने एक साथ पी। इधर-उधर की काफी बातें मैंने उससे कहीं, जिनका उत्तर कभी उसने 'हाँ' या कभी 'हूँ' कहकर

दिया। उसकी मौनता से मैं उद्विग्न सा हो उठा। प्रेम मेरा बचपन का दोस्त था, जब मैं देहली आ गया तो वह कालिज में दाखिल हो गया था। जीवन की समस्त सुविधायें एवं ऐश्वर्य प्राप्त थे। लेकिन आज दो वर्ष बाद उसको इस बुरी दशा में देखकर मैं चिंतित हो उठा। मैंने दोबारा पूछा—

"तुम कब देहली आये ?"

"छः मास हुये।"

"मुझे खबर तक न दी और न ही मिले।"

"मुझे तुम्हारा पता मालूम नहीं था।"

"और मैंने तुम्हें पंजाब में बीसियों पत्र लिखे, पर किसी का भी जवाब नहीं आया।"

"मैं घर पर नहीं था।"

"और कहाँ थे ?"

"हिमालय की गुफाओं में।"

उसने मुस्कराने का असफल प्रयास करते हुए कहा। फिर बोला—

"खैर, छोड़ो, इन गुजरी हुई बातों में क्या रखा है। तुम बताओ, आज-कल क्या करते हो ?"

"इश्क करता हूँ।"

"इश्क······।"

"जी हाँ, लेकिन वह कोमल-कोमल हाथ, बड़ी-बड़ी आँखें, समधुर शरीर के रूप प्रकृति द्वारा निर्मित, सौंदर्य की कोई साकार प्रतिमा नहीं है बल्कि···।"

'बल्कि क्या ?"

"बल्कि मनुष्य के मस्तिष्क की निर्माण की हुई बेकारी है।"

मैंने बात समाप्त करके उसके चेहरे का निरीक्षण किया। उसके होंठ कुछ कहने के लिए फड़फड़ा रहे थे। मुझे अपने शक को विश्वास की सीमा में प्रविष्ट करवाते तनिक भी आपत्ति न हुई कि अतीत में

कोई बात जरूर हुई है जिस कारण उसका जीवन निराशा से परिपूर्ण हो गया है। वह ऐसी कौन सी बात हो सकती है जिसने उसके सुखमय जीवन को पीड़ा तथा दुख में परिवर्तित कर दिया। यही बात जानने के लिए जब मैंने उस पर दबाव डाला और अनुरोध किया तो उसने कहना आरम्भ किया—

"एक साल पहले की बात है। एफ० ए० की परीक्षा पास करके मैं बी० ए० में दाखिल हो चुका था। जीवन में उमंग और उल्लास की सृष्टि होती थी। गम के साये तो मेरे पास तक आते घबराते थे। कालिज से घर पर और घर से कालिज। फिल्म, रेस्टोरैन्ट और 'टी-पर्टियों तक मेरा जीवन सीमित था। और तुम तो जानते ही हो कि इन जगहों पर सिसकियां नहीं बल्कि हर समय कहकहे नाचते हैं और मुस्काने वातावरण को प्रभावित किये रहती हैं।

एक दिन जब मैं कालिज से पढ़ कर वापिस घर पर आया तो पता चला कि मकान की उपर वाली मंजिल में जो दो कमरे खाली थे उसमें नये किरायेदार आ गए हैं। यह सूचना मेरे लिए शायद आकर्षण का विषय न बनती। यदि मुझे यह पता न चलता कि नये आने वाले किरायेदार का परिवार, दो लड़कियां एवं एक विधवा मां पर आधारित है। मेरे हृदय में उनसे मिलने की आकांक्षा जाग उठी। परन्तु यह सोचकर कि उनके घर में कोई पुरुष नहीं है और हो सकता है कि मेरे अचानक चले जाने से उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचे। मैंने कुछ समय के लिए उनसे मिलने का विचार त्याग दिया। पर हृदय में उत्सुकता आकांक्षा का प्रबल रूप धारण कर चुकी थी। जैसे एक लड़की विवाह के बाद औरत का रूप धारण कर ले।

इतवार का दिन था। आज उनको आये पांच दिन गुजर गये थे। उनकी सीढ़ियां बाहर सड़क की ओर को थीं और आने-जाने का रास्ता भी पृथक ही था। पर एक रोज पूर्व मैंने मालूम कर लिया था कि अगर प्रातःकाल अपनी छत पर खड़ा हुआ जाये तो सामने बरामदे में

बैठे उनको देखा जा सकता है । मेरी इच्छा पूर्ण हो गई । जैसे ही छत पर पहुँच कर उनके बरामदे पर नजर डाली तो देखा कि दोनों लड़कियां कुर्सियों पर बैठी हैं । एक लड़की फिल्मी मैगजीन पढ़ रही थी और दूसरी हाथों की उंगलियां आपस में मिलाये उन पर ठोढ़ी को रखे विचार निमग्न थी । मैं निरन्तर कई मिनट तक देखता रहा ।

वे दोनों जवान थीं, दोनों सुन्दर थीं, दोनों के चेहरे पर फूलों की वर्षा शबनम की चमक थी । दोनों की मुख-मुद्रा सैकड़ों वर्षों तक हिमालय की गोद में तपस्या करने वाले किसी सन्यासी की याद दिला रही थीं । दोनों के वक्षस्थल का उभार इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि यौवन आखिरी अंगड़ाई लेने के लिए व्याकुल हो रहा है ।

अचानक एक ने फिल्मी मैगजीन से नजर उठाकर मेरी ओर देखा। एक मिनट तक वह देखती रही, फिर माथे पर बल डालकर पुनः पढ़ना प्रारम्भ कर दिया । जैसे वह कृत्रिम क्रोध का प्रदर्शन कर रही हो । चन्द मिनट बाद वह खड़ी हुई और दोबारा मेरी तरफ देखा । मैं मुस्करा पड़ा । जवाब में वह भी मुस्कराई और पर्दा उठाकर कमरे के अन्दर चली गई । दूसरी लड़की पूर्ववत् मुद्रा में मौन बैठी थी । मैं हैरान था कि आखिर बात क्या है ? यह सो रही थी या जान-बूझ कर मेरी एवं अपनी बहिन की बातों को देख कर अनजान बनने का प्रयत्न कर रही है कि तुम चिन्ता मत करो मैंने कुछ भी नहीं देखा । और सचमुच तब तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया जब उसने मेरी ओर घूम-कर देखा तो उसकी आँखें कह रही थीं कि मैंने सब कुछ देख लिया है ।

मैंने हाथ हिलाया । किताब को ऊपर नीचे करके संकेत किये । जबरदस्ती होठों पर मुस्कराहट लाने का प्रयत्न किया, लेकिन उसमें कोई हरकत पैदा न हुई । वह अटल रूप से टकटकी बांधे मेरी ओर देखती रही । उसकी दो बड़ी-बड़ी आँखों में आवश्यकता से अधिक चमक थी । मैंने उसकी नजरों की ताक न लाकर आँखें झुका लीं, जैसे इश्क

ने हुस्न से हार मान ली हो।

"प्रेम ?"

नीचे से पिता जी ने आवाज दी।

"आया जी।"

यह शब्द मैंने अपनी पूरी शक्ति लगा उच्चारित किये ताकि वह भी भली प्रकार सुन ले। और सच मानिये कि जब मेरी आवाज उसके कानों तक पहुंची तो उसमें कम्पन पैदा हुई और वह अन्दर जाने के लिए कुर्सी से उठी तो रास्ते में पड़ी मेज से जा टकराई। मैं खिल खिला कर हंस पड़ा। वह अपने दांये हाथ की चोट लगे स्थान को मलने लगी। उसके चेहरे पर दर्द, पीड़ा व वेदना की रेखायें नृत्य कर रही थीं। उसको ऐसी स्थिति में देखकर मेरे हृदय में उसके प्रति सहानुभूति का भाव जागृत हो उठा। उसके भाव में सहानुभूति वस्तुतः कम थी प्यार की मात्रा अधिक ?

दिन और रात का संघर्ष होता रहा। मैं उन दोनों बहिनों की ओर आकर्षित होता गया पढ़ाई से तबियत उचट गई थी तथा मानसिक शांति नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी। कालिज के रंगीन वातावरण में अब मेरे लिए कोई आकर्षण शेष नहीं था। दोस्तों की महफिलें भी अब मुझे फीकी एवं सूनी नजर आई। जब भी मैंने अपने हृदय में झांका, इस नये परिवर्तन का कारण ढूंढना चाहा तो अपनी आशा, विश्वास, हृदय, मन व बुद्धि सब को उन सुन्दरता की मूर्तियों पर केन्द्रित पाया। मैंने यह भी सोचा कि मुझे दोनों में से किसी एक ही को प्यार करना चाहिए परन्तु मैं इस बात में सर्वथा असफल रहा क्योंक जब एक सामने आती तो मैं उसकी तरफ झुक जाता और जब दूसरी शक्ति उसके आगे मुझे परास्त कर देती थी, मैं विवश था किन्तु उस विवशता में भी जीवन का समस्त उल्लास एवं हर्ष मुझे प्रतीत होता था।

इतवार की शाम थी। मैं टैनिस खेलकर घर लौटा तो देखा कि दोनों लड़कियाँ अपनी माता जी के साथ आंगन में बैठी चाय पी रही

हैं। दोनों ने हल्के गुलाबी रंग की साड़ियाँ पहन रखी थीं। मुझे आज वह बहुत प्यारी लगीं। मैं रुका नहीं बल्कि सीधा 'ड्राइंग रूम' की तरफ नमस्ते करता हुआ चला गया। एक लड़की जो उस दिन फिल्मी मैगजीन पढ़ रही थी उसने तथा उसकी माता ने मेरी नमस्ते का उत्तर दिया परन्तु उस दिन कुर्सी से टकराने वाली लड़की आज भी मौन रही। बाहर से माता जी के पुकारने की आवाज आई।

प्रेम ! 'बाहर आकर इन लोगों से मिलो।'

मैं हिचकिचाता हुआ दिल में खुशी का तूफान लिए बाहर गया। अब की बार उस लड़की ने हाथ जोड़ कर नमस्ते की। जवाब में मैंने भी हाथ जोड दिये और खाली पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गया। लगातार आधा घंटा मैं उनके बीच रहा। दोनों लड़कियाँ जिनमें एक का नाम था आशा। दूसरी का नाम था ज्योति वह दोनों खामोश बैठी रहीं। मध्यमें इतना पता चला कि उसके पति की मृत्यु को दो साल हो गये हैं मरने से पूर्व वह इम्पोर्ट तथा एक्सपोर्ट का कार्य करते थे। अपने पीछे यथेष्ट धनराशि छोड़ गए हैं, उसी से जीवन निर्वाह होता है। इतना ज्ञात होने पर वह लोग उठकर चले गए। दोनों बहिनें एक दूसरे से जुड़कर चल रही थीं। मैंने सोचा कितना प्यार है इन दोनों में, किंतु वास्तविकता तो कुछ और ही थी। उनके चले जाने के बाद माता जी ने बताया कि एक लड़की अन्धी है और दूसरी गूंगी और बहरी।

उनकी बात मेरे दिल में खंजर बनकर चुभी और मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे भूमि अपनी जगह से हिल रही है। और हजारों तूफान तथा आंधियाँ मेरी ओर द्रुतगति से चले आ रहे हैं। जिधर लड़कियां गई थीं मैंनें उधर इस तरह देखा जैसे कोई अपने आत्मीय सम्बन्धी का जनाजा निकल जाने पर खाली सड़क को देखता है।

उस दिन के पश्चात मेरा जीवन चिन्ताओं से घिर गया मुझ में सोच ने की शक्ति क्षीण हो गई थी। मन और बुद्धि में द्वन्द हो रहा था। बुद्धि तर्क का आश्रय लेकर कह रही थी कि क्या वह तुम्हारी जीवन

साथी बनने के योग्य नहीं है ? क्या तुम जीवन पर्यंत उनसे निर्वाह कर सकोगे ? वे तो दो टूटे हुए ऐसे सुन्दर खिलौने हैं जिन्हें जीवन के प्रत्येक कदम पर सहारे की जरुरत है और तुम उनको थोड़े समय तक तो सहारा दे सकते हो किन्तु स्थाई रूप से शायद तुम भी ऐसा न कर सको। तुम तो जानते हो कि इस प्रकार की कठिन परिस्थितियों में जिस बात की वकालत मन करे उसी बात की विजय होती है । अतः मन ने बुद्धि के सम्मुख परास्त होने से इन्कार कर दिया और मैंने उन दोनों को अपने जीवन का साथी बनाने का फैसला कर लिया।

घर वालों को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने समझा कि मैं पागल हो गया हूं या पागल होने वाला हूं । पहले तो यह बात केवल माता जी को मालूम थी लेकिन जब इस बात का पता पिता जी को चला तो उन्होंने अपनी बातों से, गालियों तथा व्यंगात्मक वाक्यों से सारे घर का वातावरण विषाक्त कर दिया। साथ ही उन्होंने इस बात की धमकी दी कि यदि मैंने उनकी बात का उल्लंघन किया तो सारी घरेलू सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाऊंगा। हो सकता था कि मैं उनकी धमकी पर शान्ति से विचार करके किसी उचित निर्णय पर पहुँचता पर उन्होंने मुझे सोचने का अवकाश दिये बिना ही लड़कियों की विधवा माँ को आदेश दिया कि वह तीन दिन के अन्दर-अन्दर मकान खाली करके कहीं चली जाये क्योंकि उनकी दृष्टि में समस्त झगड़े की जड़ वे लड़कियाँ ही थीं।

जब यह सूचना विधवा को मिली तो वह बहुत परेशान हुई और मुझे अपने पास बुलवाकर कहा कि मैं अपने निर्णय को बदल डालूं, आखिर मैं सिर्फ इतना कहकर वापिस चला आया कि आप चिन्ता न करें मैं स्वयं नये मकान की तलाश करूँगा और खुद भी आप के साथ ही रहूँगा।

वर्ग-भेद के इस समाज में मनुष्य कदम-कदम पर मनुष्य को पद-दलित करके अपने लिए मार्ग बनाता रहता है। और दूसरों की खुशियों

एवं अरमानों पर अपनी इच्छाओं की अट्टालिकाओं का भव्य निर्माण करता है। ये बातें सुनीं और पढ़ी बहुत थीं लेकिन पिता जी के चरित्र में वे आज साकार रूप में मेरे सामने थीं। मैंने दृढ़ता पूर्वक अन्तिम निर्णय कर लिया कि अधूरी रहती है तो रहे। कहीं नौकरी कर लूँगा। लेकिन पिता जी की उस पूंजीवादी प्रकृति के सामने कदापि सिर न झुकाऊँगा जिसमें मानवता के लिए तनिक भी प्यार और स्नेह नहीं है कितना स्वार्थी है मनुष्य समाज।

उस दिन छः तारीख थी। मुझे दूसरे शहर में मकान का प्रबन्ध करने जाना था। सन्ध्या का समय हो जाने से पूर्व मैंने सीढ़ियों में खड़ी 'ज्योति' से कहा, 'मैं दूसरे शहर में मकान का प्रबन्ध करने जा रहा हूँ। अपनी 'अम्मी' से कहना चिन्ता न करें आठ तारीख को वापिस लौट आऊँगा।'

जवाब में उसने अपना गोरा हाथ आगे बढ़ा दिया और मैंने भी हाथ बढ़ाया और चल दिया परन्तु जब मैं आठ तारीख को वापिस लौटा और स्टेशन से उतर कर घर की ओर जाने के लिये स्टेशन से उतरा तो रास्ते में क्या देखता हूँ कि दो जनाजे चले आ रहे हैं। एक बुढ़िया उनके साथ-साथ रोती-पीटती चली आ रही है। पास आने पर मालूम हुआ कि बुढ़िया अन्धी और बहरी लड़कियों की माँ है और जनाजे उन दोनों के हैं।

मेरे दिल पर बिजली गिरी। पता चला कि मेरे पिताजीने एक रात को उनका सामान घर से बाहर गुंडों से फैंकवा दिया। एक लड़की ट्रक से टकरा कर मर गई दूसरी ने अपमानित होने के कारण आत्म-हत्या कर ली। उसी दिन से शांति की खोज में घूम रहा हूं।

वह कहते-कहते चुप हो गया। दो गर्म-गर्म आँसू उसके आंखों से निकल कर बहने लगे। उसके आंसुओं में एक संसार डूब रहा था। बाहर नजर डाली रात अन्धेरी थी उसके भविष्य की भाँति काली।

करुणगाथा

रात्रि का शासन धीरे २ समाप्त हो रहा था। रात भर की कठिन यात्रा के पश्चात् चाँद, तारे विश्राम-शाला में प्रवेश करने को थे। निद्रा देवी ने संसार पर से मादकता का आवरण समेटना प्रारम्भ कर दिया था। प्रातः होने को थी, रात भर की सुख-दुख की गाथाओं को भूल कर सोये हुए प्राणी पुनः जीवन-पथ पर अग्रसर होने को उद्यत हो रहे थे। पक्षी अपने घोंसलों से निकल कर नील-गगन में विचरने लगे। क्षितिज पर हल्की पीली सी रेखाएं क्रमशः खिंचने लगीं। पक्षियों की मधुर ध्वनि वायु में मुखरित हो गई। समस्त वातावरण शान्त था। ऊषा निस्तब्ध खड़ी किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी।

विजय शीघ्रता से नगर की ओर पाँव बढ़ा रहा था, दो दिन से वह भूखा था, उसकी पत्नी भूखी थी और भूखा था रोगग्रस्त बालक! दो दिन से वह भरसक प्रयत्न कर रहा था कि कहीं मजदूरी मिल जाए, ताकि कम से कम वह बीमार बच्चे की चिकित्सा कर सके, किन्तु उस का यह प्रयत्न अब तक निष्फल ही रहा था। कल विजय का जीवन शोषित एवं पीड़ित व्यक्ति का जीवन था। कई वर्षों तक उसने मिल में नौकरी की थी। पिछले दिनों जब मजदूरों पर छटनी का चक्र चला और बहुत से मजदूर मिल से निकाले गये तो वह भी उनमें शामिल था मिल की नौकरी छूटने पर मुस्तकिल तौर पर उसे कोई काम न मिल सका। बाजारों में घूम फिर कर कुछ मजदूरी मिल जाती। जिससे वह दो दिन का भोजन जुटा पाता। तीन रोज से मजदूरी नहीं मिली। जो पैसे अब तक जमा थे वह बच्चे की बीमारी पर उठ गये थे अब दो रोज से सभी भूखे थे।

रात जब वह दिन भर काम की तलाश करता निराश घर लौटा तो केवल दो आने जेब में शेष थे जिसका वह, आते हुए बच्चे के लिए दूध ले आया था। उसने स्वयं तथा शान्ति ने समस्त रात बालक की दशा खराब होने के कारण पानी पी कर व्यतीत कर दी थी। प्रातः होते २ बालक की दशा अधिक बिगड़ गई। ज्वर के कारण छाती जुड़ने से श्वास रुक-रुक कर आने लगा। उसके लिए औषधि का प्रबन्ध करना वांछनीय था। अतः इस उद्देश्य पूर्ति के हेतु वह प्रातः काल होते शीघ्र ही घर से निकल आया था। ताकि कहीं थोड़ा-बहुत काम यानि श्रमवृति करके बालक के लिए डाक्टर से औषधि क्रय कर सके। आते हुए वह अपनी पत्नी शान्ति को विश्वास दिला आया था कि मैं बारह बजे तक अवश्य ही घर लौट आऊंगा।

विजय नगर से बाहर एक मील दूरी पर रहता था। नगर के मध्य में पहुंच कर उसने काम खोजना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम वह मन्डी की ओर गया जहां मजदूरी मिलने की अधिक आशा थी, किन्तु निराश लौटना पड़ा। स्टेशन पहुंचा, परन्तु काम न मिल सका। इधर-उधर बाजारों में दौड़ा, तांगों के अड्डे पर प्रयत्न किया पर निष्फल !

सच ही तो किसी ने कहा है कि जीवन का प्रत्येक कार्य एक कला है और इस कला को जानना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी है।

बारह बज चुके। लेकिन विजय वापिस न आया। शान्ति रोगी बालक को दरवाजे में लिए विजय की प्रतीक्षा कर रही थी। बालक की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती रही।

माँ ! ·········बालक ने धीमे स्वर से पुकारा।

मेरे लाल ! शान्ति ने कम्पित स्वर से कह कर छाती से लगा लिया और सिसक २ कर रोने लगी।

निकटवर्ती समय में विजय के आने की सम्भावना दिखाई न पड़ती थी, बच्चे की दशा अधिक बिगड़ने लगी। माँ की ममता ने जोर मारा मैले तथा फटे से एक कपड़े में बालक को लपेट कर शान्ति नगर की

ओर चल दी उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह अपने आप को डाक्टर के पैरों में गिरा कर औषधि के रूप में डाक्टर से अपने इस बच्चे के लिए प्राणों की भिक्षा माँगेगी। साथ ही उसे पूर्ण विश्वास था कि मानव-मानव के प्रति इतना निष्ठुर कदापि नहीं हो सकता कि वह शरणागत को ठुकरा दे।

शान्ति ने शीघ्रता से डाक्टर की दुकान में प्रवेश करते हुए कहा— डा० साहब ! मेरे बच्चे को मौत के मुँह से बचा लीजिये। मेरे बच्चे को बचा लो डाक्टर ! मैं आपके पाँव पड़ती हूँ मेरे.............

उसके स्वर में दीनता थी, कम्पन था। उसका गला भर आया था, अपनी असहाय एवं निरुपाय अवस्था पर वह रो पड़ी अश्रु बिन्दु आंखों से निकल कर उसकी मैली धोती में विलीन हो गये। वह एक अपराधी की भांति डाक्टर का मुख निहारने लगी।

डाक्टर ने शान्ति को आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखा। और बालक का निरीक्षण करने लगा। अभी रोगी बच्चे का हाथ डाक्टर के हाथ ही में था, इससे पहले की वह उसकी नवज देखे अकस्मात् दरवाजा खुला और नगर के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ धनपतराय ने भीतर प्रवेश किया।

डाक्टर ने बच्चे का हाथ छोड़ते हुए आगे बढ़ कर सेठ जी का स्वागत किया तथा बैठने के लिए कुर्सी प्रस्तुत की।

"फरमाईये"—डाक्टर ने सेठ जी से नम्र स्वर में कहा।

"आज प्रातः काल से ही छोटे लड़के को जुकाम हो गया है, यदि समय हो तो चल कर देखिएगा।"

दूसरे ही क्षण औषधियों का बक्स उठा चलते हुए डाक्टर ने कहा "आईये ! सेठ साहब।"

"डाक्टर······ !

शान्ति की चींख वायु में गूँज उठी। क्या है ? उसने क्रोध भरी आवाज में कहा।

"मेरे बच्चे को दवाई देते जाईयेगा, उसकी हालत बिगड़ रही है। पहले मेरे बच्चे को बचाईये, डा० साहब !" शान्ति ने करुणा भरी ध्वनि में कहा ।

"देखती नहीं, मैं एक जरूरी काम से जा रहा हूँ । घृणा युक्त दृष्टि से देखते हुए डाक्टर ने जवाब दिया ।

इसके पूर्व कि शान्ति कुछ और कहती डा० बाहर निकल चुका था उधर मोटर चली और इधर बच्चे ने अन्तिम श्वास लेकर प्राण त्याग दिये । शान्ति ने चीख मारी और शव से लिपट कर वहीं गिर कर मूर्छित हो गई ।

विजय दिन भर काम की तालाश में मारा २ फिरता रहा, किन्तु इस बेकारी के जमाने में काम न मिलता था और न मिला, दिन भर घूमते रहने के कारण क्षुब्ध अग्नि प्रज्जवलित हो उठी, मारे भूख के पेट एवं पीठ मिल कर एक हो चुके थे । चलते २ एक चक्कर आया और सड़क के किनारे गिर कर वह बेहोश हो गया ।

विजय की जब मूर्छा समाप्त हुई तब संध्या हो चुकी थी । सिर में चक्कर आ रहे थे, उसने अपनी समस्त बिखरी शारीरिक शक्तियों को को एकाग्र कर उठ कर चलना आरम्भ किया । सामने मन्दिर दिखाई पड़ा । वह उसके सामने निरुद्देश्य जा कर खड़ा हो गया । अन्दर बैठे पंडित जी 'चढ़ावे' के पैसे गिन रहे थे । अकस्मात् उसके मस्तिष्क में एक बिजली सी कड़की । सुबह से ले कर अब तक की समस्त घटनावली चित्र की भाँति आंखों के सामने से गुजर गई ।

बीमार बच्चा ! औषधि !! भूखी शान्ति और ये चढ़ावे के पैसे !!! क्या हैं ये ?

पंडित जी ने बाहर उसकी ओर देखते हुए रोष-पूर्ण वाणी में कहा । विजय ने मानों किसी अज्ञात शक्ति के इंगित पर हाथ आगे बढ़ा दिया ।

"शर्म नहीं आती मांगते हुए पतित, नीच । जाकर कहीं मेहनत मजदूरी कर । चल हट यहाँ से ।"

पंडित जी ने एक श्वास में क्रोध की वृष्टि करते हुए कह दिया। और विजय आगे बढ़ गया।

चलते-चलते वह मस्जिद के आगे ठहर गया। मौलाना साहब अन्दर बैठे अनेकों प्रकार के दान में मिलने वाले 'पुलाव' को उड़ा रहे थे। उसने हाथ आगे बढ़ाया।

"इन शैतान के बच्चों ने नाक में दम कर रखा है। अरे चल हट आगे से, 'खुदा' की तुझ पर लानत है!"

मौलाना साहब ने चावलों का एक चमचा मुख में डाल कर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। विजय आगे चल दिया।

वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ शहर से बाहर विचार निमग्न चला जा रहा था। चारों ओर अंधकार फैला हुआ था दोनों ओर सड़क पर खड़े वृक्षों की घनी छाया भयंकर रूप उपस्थित कर रही थी। आह्!

वायु में एक चीख प्रतिध्वनि हो उठी। कार रुक गई, विजय का मुख रक्त-रंजित था। डार्लिंग! गजब हो गया, कोई है। कार के भीतर से बैठी एक युवती की आवाज थी। खिड़की खुली कार से नीचे पाश्चात्य वेष-भूषा पहने एक युवक उतरा। बैटरी के प्रकाश में उसने देखा एक मनुष्य रक्त से लथ-पथ सड़क के बीच पड़ा सिसक रहा है। ऐसे भीषण दृष्य को देख और उसके परिणाम की कल्पना कर युवक सिहर उठा। कार में बैठी हुई युवती ने उतरते हुए कहा—

"जल्दी करो क्या सोच रहे हो, कोई आ जायेगा तो अनर्थ ही हो जायेगा, शीघ्र सोचो। हमारा 'हनीमून' फिर यहीं पुलिस के हाथों मनेगा।

दूसरे ही क्षण युवक ने जेब से दस २ के पांच नोट निकाले। विजय में अभी तक प्राण शेष थे। युवक ने घुटनों के बल बैठते हुए विजय से कहा—"हाँ, हाँ शाबाश, हिम्मत करो, उठो, ज्यादा चोट नहीं आई, ये लो पचास रुपये अपने बीवी, बच्चों को देना, दूध पी लेना, सब ठीक हो जायेगा।

इतना कह दोनों ने नोट विजय के सिर के पास रख दिये और मोटर चला दी। वायु का एक तीव्र झोंका आया नोट इधर-उधर सड़क में उड़ने लगे, विजय का मृत शव सड़क के बीच निस्पन्द पड़ा रहा।

शान्ति मूर्छित हो कर ऐसी गिरी कि पुन: उठ न सकी, माँ और बेटे ने स्वार्थी संसार से एक साथ मुख मोड़ लिया।

दूसरे दिन सड़क के बीच में एक शव पड़ा हुआ था। दुर्बल शरीर पीला मुख, फटे कपड़े, पंडित जी और मौलाना दोनों शव के पास खड़े थे। पंडित जी कह रहे थे यह हिन्दू है इसे जलाया जायगा मौलाना साहब कहते थे "यह मुसलमान है इसे दफनाया जायेगा" दोनों ओर से वाक्-युद्ध प्रारम्भ हुआ, शनै: २ दोनों ओर से समाज के पवित्र सपूत लाठियाँ लेकर निकल पड़े।

"मजहब खतरे में है"—एक ने कहा। "धर्म की रक्षा करो" आवाज उठी।

ये मजहब और धर्म के व्यापारी, समाज के ठेकेदार। जीते जी तो कोई भी मानव धर्म का पालन न कर सका, मरने पर सब अधिकारी बन बैठे! इससे पूर्व धर्म की रक्षा की होती अथवा मजहबी दीवाने कार्य क्षेत्र में उतरते, पुलिस आई और शव को उठा कर ले गई।

चिता पर शव रखा गया, पहले से ही एक स्त्री और बच्चे की लाश वहाँ विद्यमान थी, चिता को आग लगा दी गई, मरघट की ज्वाला धधक उठी। अग्नि शिखा क्षण-प्रतिक्षण अधिक प्रज्जवलित होती गई। अग्नि में से निकलने वाला स्वर तीव्र ध्वनि में 'करुण गाथा' का गान कर रहा था—उच्च स्वर से! काश की बहरा संसार उसको सुन सकता।

आग—जो दिल में है

वह बैलगाड़ीसे उतरी और अपने पतिदेव के पीछे-पीछे चल दी। उनके पीछे कुली एक ट्रंक उठाये आ रहा था। उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। "यह बड़ी-बड़ी इमारतें क्या हैं?" उसके पतिदेव मुसाफिरखाने में आकर रुक गए। कुली ने ट्रंक नीचे रख दिया। घूंघट में से जहां तक उसकी दृष्टि काम करती थी। आदमी ही आदमी नजर आते थे। वह रह-रह कर सोचती ये लोग'समायेंगे कहाँ? उसका चकित होना स्वाभाविक था। क्योंकि उसने गिनती के आदमी ही तो देखे थे। गाँव में ले दे कर सौदा-सुलफ की एक ही तो दुकान थी। जिसके मालिक उसके पतिदेव थे।

एक-एक करके समस्त गांव वालों की शक्लें उसकी नजरों के सामने घूम गईं। पटवारी, चौधरी और वे किसान जो तारों की छांओं में बैलों को हाँकते और कंधों पर हल रखे "जग्गे डाकू" के गीत गाते चले जाते हैं।

जग्गे मारिया लायलपुर डाका
ते तारां खड़क गई —— आपे
आपे तारीखाँ भुगवन मैं तेरे माँपे

जग्गे के लिए इन किसानों के दिलों में कितना सम्मान है। यद्यपि वह डाकू ही था। तथापि निर्धनों की सहायता करने वाला कोमल हृदय पुरुष। गाँव के वायुमंडल में अपने को तल्लीन करते हुए वह न जाने 'जग्गे' को और कितने सम्मान से स्मरण करने लगती, अगर उसके पतिदेव उसकी विचार शृंखला को भंग न कर देते। "तुम जरा इस ट्रंक पर बैठो, मैं टिकट लेकर अभी आता हूँ।" उसके पतिदेव एक

ओर को चल दिए और उसकी आँखें पतिदेव के पैरों का पीछा करने लगीं। अंत में उसकी आँखों ने उनको जा ही तो लिया। उसने पुनः गौर से देखा। भीड़ बहुत थी। कंधे से कंधा टकरा रहा था। तिल तक धरने को जगह न थी। लोग उसके पतिदेव को खड़े ही न होने देते थे। अकस्मात उसने दूसरी ओर देखा—उधर भीड़ बहुत कम थी। वह सोचने लगी कि वह पतिदेव को कैसे कहे कि वह उधर से टिकट ले लें।

उसके देखते ही देखते लोग बिखरते गये और दो भागों में विभक्त हो गए। जैसे नदी के दो किनारे हों, और उनके मिलने की कोई आशा न हो। उनमें एक औरत टिकट लेने के लिए आगे बढ़ी। "यह भी खूब तमाशा है। गांव के साहूकार को तो कोई खड़ा भी नहीं होने देता। और न जाने कौन लाट साहब की बच्ची है जिसके आते ही मर्दों ने राह बना दी है। शर्म नहीं आती उसे कमीनी पराये मर्दों के सामने यूँ खुले मुँह आते हुए।

काश जग्गो को उसके गीतों के हीरो को और बेबसों के सहायक को इनकी बेबसी मालूम हो जाती तो वह उन्हें बता देती कि वह कैसे उसे टिकट नहीं लेने देते।

"हाय ! इसके गाल इतने सुर्ख क्यों है। अरे ! इसके चेहरे पर इतनी सफेदी क्यों है। अरे ! इसके हाथ में क्या है ? जिसमें से वह रुपये निकाल रही है। क्या अकेले ही सफर करेगी ? चलती किस तरह है। खूबसूरत भी नहीं। मगर लोग उसको आँखें फाड़-फाड़ कर क्यों देख रहे हैं। क्या ये शहरी ऐसे ही होते हैं?

उसके पति के लौट आने पर उसके बिचार बिखर गए। उसके पति-देव अंधे की लाठी बने आगे चल रहे थे। और वह अपने जीवन साथी के पीछे २। उसके दो हाथ लम्बे घूँघट ने उसको और भी आकर्षण का विषय बना दिया था। कंधे से कंधा टकरा रहा था। इतने में एक नौजवान लड़का भीड़ को चीरता हुआ आया। और उसे स्पर्श करता

हुआ आगे चला गया। वह उस नौजवान को तो न देख सकी मगर उस के सुर्ख और सफेद बूट उसकी आखों में नाचते रहे। उसने सुना था कि शहरी नौजवान खूबसूरत औरतों को ठोकरें मारा करते हैं, स्पर्श किया करते हैं तथा उन पर फबंतियां कसा करते हैं। तो क्या वह भी खूबसूरत है। मगर इसमें शक की कौनसी बात है। गाँव भर में उसकी सुन्दरता की चर्चा है। मगर उसने मुख कैसे देखा? आखिर दोपट्टा भी तो मलमल का है। अगर मुख को नहीं देखा तो चाल से भाँप लिया होगा इसकी चाल तो उसके पति देव को भी बहुत भाती है। उसका दिल बेचैन सा हो गया।

उसने अपने आपमें कुछ कमी अनुभव की। वह बार २ पीछे की ओर देखने लगी। मगर वह सुर्ख और सफेद बूट उसे कहीं दिखाई न दिये। उसका जी चाहने लगा कि वह नौजवान फिर एक बार इधर से गुजरे, और एक बार पुनः उसका शरीर उससे छूजाय। और एक असीम भौतिक आनन्द की उपलब्धि हो जाए। उसके दिल के किसी कोने से एक आवाज आई। "दमयंती ! तुमने वह पाप किया है कि जिसका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।"

वह सहमी, कांपी और फिर सम्भल गई। उसे फिर ख्याल आया कि किसी ने देख तो नहीं लिया। कोई क्या कहेगा। गांव की साहूकारणी को कोई यों स्पर्श कर जाये। साहूकारणी का शब्द मस्तिष्क में आते ही वह गांव के संसार में खो गई। उसे फिर गांव की वे 'फूहड़' औरतें याद आने लगीं। जिन्हें बर्तन साफ करने और चूल्हा सुलगाने से ही अवकाश नहीं मिलता। ओपले थापना जिनका नित्य-प्रति का कार्य है। जिनके मन में पति सेवा के अतिरिक्त कोई भावना ही नहीं। जिन के लिए पति संसार की उत्कृष्ट वस्तु हैं। वही उनका बादशाह है। वही उनका अन्नदाता है। मगर गांव की फूहड़ औरतों को कभी ऐसी भीड़ से गुजरने का अवसर मिला है ? अगर नहीं मिला तो यही कारण है कि उनके पति उनके लिए सबसे अच्छे और खूबसूरत मर्द हैं। अगर वे

एक बार ऐसी भीड़ में आ जायें और नौजवानों से टकरा जायें, सिगरटों के धुएं उनके चहरों पर बरसात के बादलों की तरह छा जायें और अनेकों खूबसूरत चेहरे उनकी नजरों से गुजरें ......तो क्या फिर भी उनके पतिदेव उनके लिए परमात्मास्वरूप और खूबसूरत होगें।

फिर एकाएक जैसे इंजन के ठहर जाने पर गाड़ी के डिब्बे ठहर जाते हैं, वह ठहर गई। उसके पतिदेव गाँव के साहूकार उससे दो पग आगे बढ़ कर एक डिब्बे की ओर लपके। दरवाजे में एक फौजी खड़ा था। बहुत से आदमी खिड़कियों से सिर बाहर निकाले हुए थे। और बहुत से आदमी उसकी मिन्नतें कर रहे थे। उसके पति भी उस फौजी के पास गए विनीत स्वर में बहुत कुछ कहा। मगर जवाब एक ही मिला "जगह नहीं है, लाला!"

दमयंती दो कदम दूर खड़ी सब कुछ देख रही थी। उसे अपने पतिदेव पर रहम आ रहा था। गाँव में वह साहूकार है। कोई उनसे बढ़कर बात नहीं कर सकता। तो क्या स्टेशन आते ही वह इतने 'हेठे' हो गए हैं कि कोई उन्हें बैठने के लिए जगह भी नहीं देता। उसे वह बैलगाड़ी याद आ गई। जो उन्हें वहाँ लाई थी। जब उसके पति ने एक चवन्नी गाड़ीबान को दी थी तो उसने कितनी दुआऐं दी थीं।

"साहूकार जी! भगवान आपकी उम्र लम्बी करे। माया आपके कदम चूमे। भगवान आपको चन्दा सा बच्चा दे...।" तब वह मारे शर्म के सिमट सी गई थी। मगर यह तो बिलकुल अजीब मामला है। पैसे देकर भी गाड़ी में सवार होना नसीब नहीं होता। उसके पतिदेव नाकाम वापिस आ रहे थे। उनके कदमों से निराशा टपक रही थी।

वह फिर अपने पतिदेव के पीछे-पीछे चलने लगी। लोग इधर-उधर घूम रहे थे। उसके पति फिर एक डिब्बे के सामने रुके। यहाँ पर भी दरवाजे में एक फौजी खड़ा था। वह डर सी गई। जैसे उसके पति को

फिर निराश होना पड़ा हो। मगर आशा के विपरीत फौजी ने उसके पति से पूछा—

"कहाँ तक जाओगे लाला! क्या यह औरत भी आपके साथ है ?"

उसके पति ने जैसे अमृत के चन्द घूंट पीकर कहा—"भगवान तुम्हारा भला करे।"

मगर फौजी ने अपने सवाल का पूरा जवाब न पाकर पुनः सवाल किया। उसके पति ने उत्तर दिया—"मुझे दो-चार ही स्टेशन जाना है और यह भी मेरे साथ है।"

उसने दरवाजा खोला। दूसरे आदमी भी अन्दर जाने का प्रयत्न करने लगे। मगर उसने रास्ता रोका। फिर भी दो-चार अन्दर घुस ही गये। आदमी सिमट कर बैठ गए। वह भी अपने पति के पास दुबक कर बैठ गई। जैसे एक मुर्गी ने सर्दी से अकड़ कर अपने परों को समेट लिया हो।

खोंचे वाले से उसके पति ने दो रोटियों पर दाल रखवाकर उसे दी। कुछ हिचकिचाहट के बाद उसने बाहर की ओर मुंह करके खाना शुरू किया। वह खाना भी खा रही थी और सामने डाइनिंग-रूम भी नजर आ रहा था। अचानक एक औरत सुसज्जित वेषभूषा में आई। उसने जालीदार दरवाजा खोला और अन्दर चली गई। दरवाजा स्वयं-मेव बन्द हो गया। वह हैरान रह गई। एक मिनट में उसने क्या-क्या देखा।

खूबसूरत मेजों पर सुन्दर बर्तन चुने हुए, खाने, सेवा के लिए नौकर, स्वर्ग तो कहीं होगा या नहीं, मगर इन लोगों के लिए तो यही स्वर्ग है। राजा इन्द्र की काल्पनिक तस्वीरें उसके सामने नाचने लगीं। उसे अपने आपसे घृणा होने लगी। वह भी चाहती थी कि किसी के साथ हँस-हँस कर बातें करते हुए खाना खाए। उसी नौजवान के सुर्ख और सफेद बूट उसकी आँखों में घूम गए तथा सूखी रोटी का ग्रास उसके

गले में अटक कर रह गया। उसने रोटी से हाथ खींच लिया। उसके पतिदेव ने उसे खाना न खाते देख कर बहुत मजबूर किया कि वह खाये। उसे भूख लगी होगी। मगर उसका हृदय दर्द से भर आया। उसे खाने से नफरत हो गई। उसका दिल मुर्झा गया।

दो-तीन सज्जन सामने वाली सीट पर बैठे हुए थे। उन्होंने कहा भी कि औरत को जनाने डिब्बे में बैठा दिया जाये।

उसके पतिदेव ने जवाब दिया—"जनाने डिब्बे में तो तिल धरने को भी स्थान नहीं है।"

फिर एक साहब बोले—

"इसको एक अलग सीट पर बैठा दो।"

अतएव वह सामने वाली सीट पर बैठ गई। नये स्थान पर बैठकर उसने डिब्बे में बैठे मुसाफिरों पर नजर डाली।

फौजी अभी तक दरवाजे में ही खड़ा था। और कभी-कभी आँखें फेर कर देख लेता था। गाड़ी चली तो वह दरवाजे से लग कर खड़ा हो गया। वह सोचने लगी। ये लोग कहाँ जायेंगे। इन्हें क्या काम है। क्या ये सब उनके अपने सम्बन्धियों के विवाह में शामिल होने जा रहे हैं। उसकी नजर अपने पतिदेव के चेहरे पर जाकर रुकी। वह ऊँघ रहे थे। गाँव फिर उसकी नजरों में घूम गया। उसके पति खाना खाने के बाद जब बाहर वाले कमरे में जा बैठते थे, हुक्का गुड़गुड़ाते रहते और ऊँघते हुए ग्राहकों की प्रतीक्षा करते रहते। वह घूंघट में से अपने पति-देव की टोपी को देख रही थी। जिसे विवाह के मौके पर शायद उनकी माँ ने शहर से मंगवाया था। और अब उस पर अनगिनित धब्बे पड़ चुके थे। वह उसके ढीले-ढाले कोट और बढ़ी हुई उसकी तोंद को भी देख रही थी। उसकी बड़ी तोंद उसे एक आँख न भाती थी। मगर क्या करती, विरोध की ताकत कहाँ से लाती। वह तो उसके पतिदेव हैं। उसके परमात्मा हैं। गाड़ी मार्ग पर जा रही थी और वह सोच

रही थी कि कहीं दूर भाग जाये। जहाँ पति परमात्मा की बात न हो। जहाँ गांव का जहरीला जीवन न हो। जहाँ काली तोंदों के स्थान पर सफेद और सुर्ख बूटों वाला कोई खूबसूरत नौजवान हो। उसने बाहर नजर डाली, रात अंधेरी हो चली थी। बिलकुल उसके जीवन की नाईं कालिमामय।

अभिनय

रात्रि किसी हत्यारे की आत्मा की भांति कालिमामय थी। आकाश के तारागण असंख्य पुष्प की नाई अपनी मधुरता और ज्योति को निरर्थक नष्ट कर रहे थे। रात्रि के उस निर्मूल साम्राज्य में 'मिल' का धुआं चतुर्दिश विसर्जित होकर वायुमंडल को विषाक्त कर रहा था।

मिल के भीतर दैत्यकाय यंत्रों का सिंह-गर्जन हो रहा था और रात्रि में ठिठुरते मजदूर एक लम्बी पंक्ति बनाये बैठे थे। कुछ अन्दर से निकल, कर निर्मित पंक्ति में बैठ जाते, कुछ उठकर चले जाते। रात्रि भर यह क्रम चलता रहता। अब भी पंक्ति बनी हुई थी। कुछ मजदूर आ-जा रहे थे और कुछ बीड़ी सुलगाने का प्रयत्न कर रहे थे। रामू भी उस बनी हुई कारीगरों की पंक्ति में बैठ गया और बीड़ी पीने लगा। रामू की आयु २२ वर्ष के लगभग थी। उसे आज मिल में काम करते लग-भग पांच वर्ष व्यतीत हो चुके थे। घर में एक अन्धी मां था जिस पर जरा का आक्रमण हो चुका था और एक बहन 'रुधिया' थी। रुधिया जवान थी, सुन्दर थी, उसका लावण्य सहज में ही प्रत्येक मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। तीन प्राणियों का यह परिवार नगर से थोड़ी दूर बाहर बने कच्चे मकान में निवास करता था। जिसको लोग 'मजदूरों की बस्ती' के नाम से सम्बोधित करते थे। रामू का जीवन सूखा, नीरस, विषाद युक्त था। नित्य-प्रति कोई न कोई चिन्ता व्याधि की भांति उसे घेरे रहती थी। आज बूढ़ी मां बीमार हो गई, कल राशन के लिए दाम नहीं, अब रुधिया के कपड़े फट गये, क्या बने, मजदूरों ने हड़ताल करदी, रोज छंटनी का चक्कर

चलता है, निकाल न दिया जाऊँ, आदि चिन्तायें उसे ग्रसती रहती थीं। पर इस से भी बड़ी उसे एक चिन्ता थी रधिया ! उसका विवाह करना था। बिरादरी वाले उस पर व्यंग कसते, कि रधिया जवान हो गई लेकिन रामू उसका विवाह नहीं करता। मित्र उसको परामर्श देते, अबे क्यों मरता है चिन्ता में घुल-घुल कर, किसी बनिये से उधार ले लो, दे देना थोड़ा-थोड़ा करके। किन्तु रामू डरता था कि बर्तन बहुत न्यून हैं। यदि न दिया गया तो क्या होगा ? अब भी बीड़ी पीते हुए वह यही सोच रहा था। अंततः उसने निश्चय कर लिया कि अब की फाग में 'राघव' बनिये से पांच सौ रुपये लेकर रधिया की शादी कर देगा। बीड़ी समाप्त कर वह उठकर भीतर चला गया और मशीन पर पूर्वत कार्य करने लगा।

सेठ रामनारायण, मिल मालिक की उच्च अट्टालिका मिल से ही सम्बद्ध थी। कोठी के सामने दूर तक खाली मैदान पड़ा था। कोठी के पिछवाड़े थोड़ी दूर पर मिल के इंजन से निकले जले कोयले एवं राख फेंकी जाती थी। जहां से मिल में काम करने वालों की स्त्रियाँ घर में आग जलाने के लिए कोयला चुन कर ले जाया करती थीं। रामू की बहन रधिया भी अपनी सहेलियों के साथ आती और घर में जलाने के हेतु कोयले ले जाती थी। रामू ने कई बार मना भी किया था—"रधिया ! तुम वहाँ मत जाया करो।" वह ऐसा क्यों कहता था, यह तो वह स्वयं भी न जान सका। किन्तु यह उसकी आत्मा की आवाज थी जो उपयुक्त वातावरण पाकर घोषित हो जाती थी।

रधिया हँस कर कह देती—"भैया, मैं कोई खांड की डली थोड़ी हूँ जो कोई मुँह में डाल कर निगल जायेगा। कोई कुछ कहे, अपना दिल साफ होना चाहिए।"

रधिया की यह बात सुनकर रामू मौन हो जाता।

समय का क्रम चलता रहा। रधिया आवश्यकता पड़ने पर कोयले

चुनने जाती और वापिस लौट आती। उसका हृदय भविष्य में घटित होने वाली दुर्घटना से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ था।

कई बार सेठ जी की वासनायुक्त दृष्टि उस पर पड़ी थी और उनका हृदय रधिया को देखकर मचला था। मगर वह सुअवसर की प्रतीक्षा में थे। जब कि उनकी मनोकामना पूरी हो जायेगी।

नित्यप्रति की भाँति आज भी रधिया अपनी सहेलियों के संग कोयले बीनने गई थी। मगर उसकी सहेलियाँ अपने कार्य पूर्ण कर लौट गई और वह अकेली रह गई।

अकेले में हाथ जल्दी-जल्दी अपना कार्य कर रहे थे और उसका कोमल हृदय एक अज्ञात भय से कांप रहा था। उसने सोचा, वह यहाँ क्यों आती है ? भैया जी तो कई बार उसे रोक चुके हैं। पर हाय री विवशता ! वह क्या करती ? कोयलों की भी तो नित्य आवश्यकता रहती थी। वेतन कम है, मां रोग-ग्रस्त है। बाजार से कोयले खरीदने के लिए पैसे ही कहाँ बचते थे कि वह कोयले बीनने छोड़ दे।

उसका पैर कोयले चुनते-चुनते मैली धोती में उलझ गया और वह धड़ाम से राख के ढेर पर गिर पड़ी। उठी, सम्भली, थैला उठाया और जाने लगी।

उसी समस्त कार्य-विधियों का एक व्यक्ति चिरकाल से पैनी दृष्टि से निरीक्षण कर रहा था। कार्य सम्पन्न करने पर वह घर की ओर बढ़ी ही थी कि एक आवाज आई—

"ऐ लड़की ! यहाँ आओ,—यहाँ पर।" एक कठोर स्वर ने पुकारा।

रधिया का हृदय धक से रह गया। कुछ देर तो वह खड़ी सोचती रही, फिर धीरे-धीरे उस पुरुष के पास कोठी में पहुंची। यह जानकर उसे कुछ धैर्य बंधा कि यह तो सेठ रामनारायण की कोठी है। और उसका भैया सेठ जी की मिल में काम करता है। सेठ जी फाटक पर खड़े थे। रधिया डरती हुई आगे बढ़ी। सेठ जी ने उससे कहा—

"कहाँ रहती हो ? क्या नाम है ? कहाँ काम करती हो ?" आदि बातें पूछीं। रधिया ने एक-एक करके सब बातें बता दीं। सेठ जी एक पग आगे बढ़े। रधिया सिहर उठी। वह पीछे हट गए। रधिया को सांत्वना मिली। सेठ जी ने रधिया से कहा—

"तुम शीघ्र घर को जाओ, तुम्हारी मां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी। और हाँ, सुनो, यदि अधिक कोयलों की आवश्यकता हो तो कोठी के भीतर आकर नौकर से मांग लेना, मैं नौकर को कह दूँगा।"

सेठ जी एक कुटिल विचार लिए कोठी के भीतर चले गए। रधिया वहाँ से इतनी तीव्रगति से चली कि घर तक आते-आते उसकी सांस फूल चुकी थी

रामू मिल से वापिस घर लौटा, किन्तु रधिया ने आज की कोठी वाली घटना का वर्णन उससे नहीं किया। न जाने क्यों ?

+ × +

मिल में छांटी का कुचक्र चल रहा था। नित्यप्रति दस-पन्द्रह मजदूर निकाल दिए जाते। मजदूरों में संगठन की शक्ति न थी। अतः वह विरोध न कर सकते थे। 'जो होना है होने दो की भावना सब में काम कर रही थी। रामू मशीन पर काम कर रहा था। उसके निरीक्षक मिस्तरी ने आकर कहा—

"रामू ! तुम्हें सेठ जी ने बुलाया है। जाओ, मैं तुम्हारी मशीन को देखता हूँ।"

रामू की आज-कल दिन की ड्यूटी थी। उस पर मानो वज्रपात हुआ। चिंतित, निराश, भय में संलग्न वह जा रहा था और सोच रहा था—"निकाल न दिया जाऊँ, सेठ जी ने क्यों बुलाया है। पहले तो कभी नहीं बुलाते, आज क्यों बुलाया है। जरूर कोई घटना होने वाली है।" विचारों के असमन्जस में पड़ा वह सेठ जी के कमरे के बाहर पहुंच गया। भीतर बैठे सेठजी कुछ मिल सम्बन्धी कागजों का

निरीक्षण कर रहे थे। बाहर खड़े चपरासी ने रामू के आने की सूचना दी। रामू को भीतर बुलवाया गया। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अपने भाग्य का निर्णय सुनने को प्रस्तुत हो गया। सेठ जी ने व्यापारी ढंग से कहा:—

"रामू कम्पनी को तुम्हारी सेवा की कद्र है। लेकिन हम विवश हैं कि हमको अपने दीर्घ कालीन सहयोगियों को जवाब देना पड़ रहा है। आज के छान्टी किए जाने वालों में मैनेजर साहब ने तुम्हारा नाम भी प्रस्तुत किया है।"

इतना कहकर सेठजी रामू के मुख की ओर पैनी दृष्टि से देखने लगे। उसका मुख निराशा का केन्द्र बन गया। सेठजी ने फिर उसी नम्र भाव से कहा:—

लेकिन हम नहीं चाहते कि तुमको जवाब दें क्योंकि तुमने मिल की काफी सेवा की है तुम निरन्तर पूर्ववत काम करते रहोगे।

निराशा आशा में परिवर्तित हो गई। विषाद उल्लास में बदल गया। रामू की आंखों में कृतज्ञता का भाव छा गया। उसका जी चाहा कि वह सेठ जी के पैर चूम ले सेठ जी कितना ध्यान रखते हैं अपने पुराने आदमियों का।

तत्पश्चात् सेठजी ने मित्रता पूर्ण व्यवहार द्वारा उसके परिवार की सब बातें पूछ लीं। और रामू सगौरव बताता गया। अन्ततः सेठजी ने कहा—रामू हमारे घर पर औरतें अकेली रहती हैं रधिया को कहना कभी आजाया करे, कुछ घर का काम कर जाया करेगी। जो उचित श्रम वृत्ति होगी वह उसको मिल जाया करेगी इतना कहकर सेठ जी ने जेब से पचास रु० निकाल कर कहा—"ये रहा रधिया का पेशगी वेतन। किसी से कहना मत। यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो चुपके से रधिया के हाथ मंगवा लेना।

पहले तो रामू असमंजस में पड़ गया कि रधिया की सेठजी के यहाँ

काम करने भेजे या न । यदि इन्कार करते हैं तो सेठजी रुष्ट हो जायेंगे और मगर भेजता है तो बिरादरी वाले क्या कहेंगे । अन्ततः उसने सोचा रधिया सारा दिन घर में भी तो पड़ी रहती है । सेठजी के यहाँ ही काम थोड़ी देर कर आयेगी तो क्या होगा । यह विचार कर उसने सिर हिलाकर स्वीकृत दे दी तथा नोट उठा कर जेब में डाल लिये और वापिस आ गया । रामू प्रसन्न था सेठजी के नम्रतापूर्वक व्यवहार पर एवं निर्धन रक्षा पर । सेठजी हर्षित थे कि शिकार जाल में फंस चुका है, आकांक्षा पूर्ति का समय निकट है ।

एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसको विस्मय या आश्चर्य था । वह था बाहर खड़ा चपरासी जिसने रामू की और सेठजी का समस्त वार्तालाप सुन लिया था । वह सोच रहा था कि इतनी नम्रता पहले तो कभी सेठजी में नहीं देखी । इतना कोमल स्वर पहले तो कभी सेठजी के मुख से नहीं निकला । इतना मित्रतापूर्ण व्यवहार पहले तो कभी किसी के साथ उनको करते नहीं देखा ।

काश ! कि वह इस रहस्य को समझ सकता ।

काम से वापिसी पर रामू ने सारी घटना व्योरा और अपनी बूढ़ी माँ को कह सुनाई । सेठजी की प्रशंसा की, उनके गुण-गान, उनके इज्जत पूर्ण व्यवहार के प्रति हृदय के समस्त सदभाव श्रद्धा के रूप में सेठजी पर विर्सजित कर दिए । रधिया को यहाँ काम करने का आदेश दिय रधिया भाई के कहने का विरोध न कर सकी सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी । वह सोच रही थी कि रुपये में कितनी शक्ति है जो भाई कल तक बहन को बाहर कोयले लेने के लिए जाने की आज्ञा नहीं देता था आज वही बहन को नौकरी कराने पर उद्यत हो गया । दूसरे दिन से ही रधिया नियम पूर्वक सेठजी की कोठी पर काम करने के हेतु जाने लगी ।

रुधिया को एक सप्ताह काम करते व्यतीत हो गया । उसको जो काम कहा जाता कर देती । उसका भय जो कुछ दिन पूर्व हृदय में विद्यमान अब प्रायः लुप्त हो चुका था । आज भी नई धोती पहजोने

सेठजी के घर से मिली थी रधिया कोठी में पहुंची । बूढ़ा माली कोठी के उद्यान में बैठा बनस्पतियों को उचित रूप दे रहा था । वह भीतर चली गई । अन्दर जाकर झाड़ू लगाया, वस्तुओं को वस्त्र से साफ किया आज घर की सब स्त्रियाँ बाहर गई थीं सेठजी कमरे में बैठे व्यापार सम्बन्धी कागजों का निरीक्षण कर रहे थे ।

उन्होंने कमरे में से पुकारा—

"रधिया !"

"जी ! सेठ जी ।"

काम करते उसका हाथ थम गया ।

यह मेज तो तुम साफ करना भूल ही गईं ।"

सेठ जी ने कोने में पड़े एक मेज की ओर संकेत किया ।

रधिया ने तुरन्त सहमे हुए स्वर में उत्तर दिया ।

"अभी किये देती हूँ जी ।"

कहकर वह हाथ में पकड़े कपड़े को झाड़ते हुए मेज की ओर बढ़ी । सेठ जी अपने स्थान से उठे । रधिया की ओर एक पैनी दृष्टि डाली । वह अपना काम करने में संलग्न थी । सेठ जी धीरे-धीरे चलते-चल दरवाजे की ओर बढ़े और हल्के से दरवाजा बन्द करके अन्दर से कुन्दी चढ़ा दी और रधिया की ओर हृदय में एक पापमय भयंकर भाव को लेकर अग्रसर हुए ।

रधिया ने उनका यह कर्म देख लिया । उसका हृदय भय से सिहर उठा । वह पीछे हटती गई । सेठ जी आगे बढ़ते गए । कमरे की मजबूत दीवार ने उसका रास्ता रोक लिया । सेठ जी का मन हर्षित हो उठा ।

वह चीखी—सेठ जी मुस्कराये ।

वह रोयी—सेठ जी ने अट्टाहास किया ।

वह सिसकी—सेठ जी हंसने लगे ।

और—फिर ?

वह हार गई—सेठ जी जीत गए। ठीक तो है, नारी की शारीरिक दुर्बलता पुरुष की सबल पशुता का सामना करती भी तो कैसे।

रात्रि किसी हत्यारे की आत्मा की भांति कलिमामय थी। आकाश के तारागण अरण्य पुष्प की भाँति अपनी मधुरता और दीप्ति को निरर्थक नष्ट कर रहे थे। रात्रि के उस निर्भय साम्राज्य में मिल का धुआँ चतुर्दिश विसर्जित होकर वायुमंडल को विषाक्त कर रहा था।

रामू एक मैली सी चादर में खेस के नीचे नौ मास पश्चात उत्पन्न होने वाला रधिया का कलंक छिपाये चला जा रहा था। रुधिया का वह कलंक जब जीवित शिशु के रूप में चीत्कार करने लगा तो रामू के कठोर हाथों ने सदा के लिए उसका गला दबा दिया था और अब सदा के लिए उसका प्रकट रूप भी खत्म करने के हेतु मिल की ओर बढ़ रहा था।

लोगों की दृष्टि से बचता वह 'वायलर' के पास पहुंचा तो मिस्त्री निद्रा से चूर एक ओर बैठा ऊँघ रहा था। रामू ने अवसर देख मृत शरीर को 'वायलर' के भीतर कोयले की भाँति फेंक दिया। एक जोर का धमाका हुआ। मिस्त्री की निद्रा भंग हो गई। उसने रामू की ओर देखा, वह पहले से ही वायलर की ओर दोनों हाथ किए शीत दूर करने का अभिनय कर रहा था।

हमी तो थे !

अजन्ता की सुन्दर गुफायें, काशी के भव्य मन्दिर, आगरे की अनुपम मस्जिदें, देहली के मीनार, काश्मीर की कर्मयथा, गंगा-यमुना का पुनीत जल, कल-कल बहते गिरी- पर आज भी अपनी मूक भाषा से हमारे बलिदानों की कहानी संसार से कह रहे हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है। जब कभी अन्याय का परतम लहराया, 'हमी तो थे' जो उसका समूल विध्वंस करने के लिए आगे बढ़े।

नादिर शाह के अत्याचारों का जवाब किसने दिया ? चंगेज से किस ने टक्कर ली ? मानसिंह के अभोन्नत मस्तक को किसने झुकाया, देश के भाल को किसने नीचा किया ? हमीं तो थे।—आज भी !

लौह श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई माता का क्रन्दन स्वर जब हमारे कानों में पहुँचा, तो हमने साम्राज्य वादियों से प्रतिशोध लिया। तब हमी तो थे जिन्होंने स्कूल छोड़े, कालेजों को त्यागा और स्वतन्त्रता का झंडा लेकर आगे बढ़े।

जब बंगाल में भूख की ज्वाला धधक उठी। पद-दलित, पीड़ित बंगाली जनता ने चीत्कार किया। गुरुदेव रो पड़े। उनके गीत सिसकियाँ भर-भर कर दम तोड़ने लगे। नेता का देश, सागर की जन्म भूमि, चन्द्र की सरजमीं अस्थि पंजरों से युक्त हो गई।—तब

हम ने क्या कुछ नहीं किया ? क्या हम अब ये कहकर कि हम ने घर-घर आकर रुपए एकत्र किए, कपड़े भेजे, गन्दम दी, डाक्टरों को भेजा दुर्भिक्ष पीड़ित सहायता समितियाँ बनाई, अपनी क्षुद्रता का प्रदर्शन करें ?

हमारी महान् परिचित से सँसार पश्चिम है। तुम अपने दमनकारी तत्वों से हमारी आवाज को दबा नहीं सकते । जब हमारे सवालात का जवाब हथकड़ियों कीझंकार से दिया गया। जब अबोध शिशु दूध के लिए चिल्लाये तो उन पर लाठियाँ बरसाई गई। युवक वर्ग ने जब इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई तो उन पर गोलियाँ चलाई गई। ऐसे समय में भी हम आगे ही बढ़े हैं।

तुम्हीं बताओ ! कहाँ गये वह रामराज्य के मधुर सपने ? कहाँ गुम हो गई वह जनता के राज्य की आवाज, जो कभी तुमने हमारे साथ मिल कर लगाई थी ? वह कोरा भ्रांम था, भ्राति थी या हमारी सरलता का अपहरण। क्या था ?

तुम नहीं देख सकते, लेकिन हमारी आँखें तो देख रही हैं। तुम नहीं सुन सकते, पर हमारे कान तो सुन रहे हैं। महाराष्ट्र से आज यह कौन चिल्ला रहा है ? बंगाल से सिसक-सिसक कर किस के रोने की आवाज आ रही है? तेलगाना में मौत से कौन संघर्ष कर रहा है ? रजनी के अन्धकार मे फुटपाथ पर वही सो रहा है, जिसने एक गगन-चुम्बी अट्टालिका का निर्माण किया। झोंपड़ी में करवटें बदल-बदल कर उसी के बच्चे रात गुजार रहे हैं, जो संसार का अन्नदाता है, शीत ऋतु में उसी की प्रेयसी नंगी पड़ी सिसकियाँ भर रही है, जो भीमकाय मशीन से करोड़ों गज कपड़ा बुनता है।

यद्यपि अन्धकार का आवरण मजबूत, है लेकिन प्रकाश की रेखायें जो कभी-कभी झिलमिला उठती हैं। उसकी रोशनी में तुम्हारा रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। पीड़ा और वेदना से आत्मा सन्त्रस्त है। क्या यह सत्य है कि कल जो हमारे महान शत्रु थे आज उन्हीं से तुम हाथ मिला रहे हो ? उन्हीं के संकेतों पर समारोह में सम्मिलित होकर अपनी वफादारी को प्रकट कर रहे हो। क्या इतनी जल्दी भूल गए उनको ? ये वही तो हैं, जिन्होंने देश भक्त तांतिया को फांसी पर लटकाया था। ये वही तो हैं, जिन्होंने झांसी की रानी को हम से छीन

लिया था। भारतीय वीरों के खून से इन्होंने ही तो हाथ रंगे थे। आज मित्रतापूर्ण व्यवहार कैसा ? तुम्हारे इस मित्रतापूर्ण व्यवहार से शहीदों की आत्मायें आज भी अशान्त हैं। रावी के किनारे से अब भी रोने की सदा आवाज आती है।

तुम तो सत्य, दया, प्रेम और अहिंसा के शास्वत सिद्धांतों के समर्थक हो न। फिर जो आज मलाया, सिंगापुर, अफरीका, हिन्द, चीन में निर्दयता का व्यवहार निरीह जनता से कर रहे हैं। उनके साथ तुम बैठकर खाने खाने हो और हाथ मिलाते हो।

गिरि कर अपना मार्ग स्वयं तलाश करता। इस अन्धकार में भी हम प्रकाश के दीपक जलायेंगे। रात्रि के बाद ही तो ऊषा की लालिमा प्रस्फुटित होती है। खिजां के बाद ही तो बहार का आगमन होता है मौत से ही तो जिन्दगी निर्मित होती है। तुम बेशक हमारी आवाज को बचाने के लिए कारागारों में बन्द कर दो, लेकिन बंदीगृहों से आग के शौले निकलेंगे जो उसकी दीवारों को रेत की दीवारों की तरह गिरा देंगें। तुम बेशक हम पर गोलियां चलाकर खून बहाओ, पर उसी खून से इनकलाब की कहानी लिखी जायेगी। वह कहानी—वह गाथा—जो युग-युगान्तरों तक हमारे बलिदानों की अमर यश गाथा संसार को सुनाती रहेगी। आने वाली तवारीख हमारी अजमत के गीत गायेंगी। इतिहास पुकार रहा है। उसकी पुकार को हमने सुन लिया। भारत की माताएँ एक बार फिर फियूचक पैदा करेगी। हम वाल्टर विक्टूर मानतिकों, गोर्खी, राज गुरु बनेंगे, जरूर बनेंगे। रात खतम होगी, जरूर होगी। सवेरा होगा, जरूर होगा। भारतीय जन-गण की कल्पनाएँ निश्चय है। साकार होंगी।

हम दोषी हैं !

प्रत्येक युग के शासक ने हमें दोषी ठहराया है। इतिहास के रक्त-रंजित पृष्ठ हमारी बात का पुष्ट प्रमाण हैं।

फिर यदि आज तुम हमें उसी नाम से सम्बोधित करो तो इसमें विस्मय क्या ?

एक दिन प्राचीन वैभव और संस्कृति के प्रतीक नगर 'रोम' में अनिल शिखायें प्रज्ज्वलित हो रही थीं—और—और वहाँ का शासक 'नीरो' आकाशचुम्बी भवन पर बैठा वीणा के तारों को झंकृत कर रहा था। याद है तुम्हें। उसके इस अमानुषिक कृत्यों का उत्तर एक दोषी ने ही दिया था। फ्रांस की क्रांति के निर्माता कौन बने ? लुई फिशर के अत्याचारों का जवाब किसने दिया ? जारशाही को विध्वंस कर लोकतन्त्र के अग्रदूत कौन बने ? नई लोकशाही की स्थापना किसने की ? क्या आज हमें इसका उत्तर देना होगा ?

तुम हमें दोषी कहो या देशद्रोही। संस्कृति के विध्वंसक की उपाधि दो या विद्रोही की संज्ञा। लेकिन, भूलो मत, समय आ रहा है। जब जनता इन बातों का निर्णय करेगी।

एक दिन इसी दोष के कारण ही तो भगतसिंह और राजगुरु ने हंसते-हंसते मृत्यु से आलिंगन किया। लाला लाजपतराय ने इसी कारण ही तो साम्राज्यवादियों की लाठियों के साये तले प्राण त्यागे थे। पंजाब के हजारों नर-नारी इस भयंकर दोष के कष्ट के कारण ही तो शहीद हुए थे।

आज—आज हम भी उसी महान् पाप के दोषी बनने जा रहे हैं।

"साम्राज्य वादियो भारत छोड़ो।" उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम। चतुर्दिक वीरों की हुंकारें फैल गई।

गाड़ियों को उलट दिया गया, बैंकों एवं कारखानों को आग लगा दी गई पुलिस और फौज पर बम्मों की वर्षा की गई। देखा-चारों ओर। अव्यवस्था, अराजकता का राज्य था। सरकार के सभी दमनकारी तत्व पड़े दम तोड़ रहे थे। विदेशी चला गया—स्वतंत्रता दिवस आन पहुंचा।

आग के शोले भड़क रहे थे। भाईयों के सम्मुख उनकी बहनों का अपमान किया जा रहा था। माताओं की गोदियों से सदा के लिए उनके हृदयाँगों को अलग कर दिया गया। नारी के नारीत्व का अपमान था, यह मनुष्य के उच्च मानवी गुणों की अपेक्षा, यौवनता का तिरस्कार। चारों ओर—एक ही स्वर था। आदमी और बहशी—बहशी और आदमी। आह, मानवता और दानवता का कितना भयंकर आलिंगन था। काश की उस अंधकार में हम देख सकते।

उसी अंधेरे में हमने-स्वतन्त्रता की देवी का अभिनन्दन किया। पर—उसके अंग प्रत्यंग कट तो चुके थे। शरीर से रक्त बह रहा था।

घंटे—दिन सप्ताह—महीने—वर्षों में परिवर्त होते गये। हमारी धारणा निरर्थक सिद्ध हुई। जो कुछ सोचा—एक भ्रम था। जो कुछ सुना एक भ्राँति थी। हमारे बलिदान ! व्यर्थ !

एक शोषक चला गया, दूसरा आया। अन्तर था केवल यही कि रूप-रंग- बात-चीत का ढंग कुछ-कुछ बदला हुआ सा था। नई बोतल में वही पुरानी शराब थी। जाल तो नया था पर शिकारी तो वही थे।

देश आजाद हुआ।

कौन कहता है देश आजाद हुआ ? किसके माथे से दासता की कालिमा छूटी ? आज भी मादरे हिन्द के चेहरे पर गुलामी की उदासी

बाकी है। आज भी खंजर सीनों में उतरने के लिए तत्पर हैं। आज भी करोड़ों निर्धनों की आत्मायें तरिद्रता में मुँह छिपाये गहरी नींद सो रही है। क्या झोंपड़ियों का क्रन्दन तुमने नहीं सुना ? क्या कच्चे मकानों से उठती आहों की, सिसकियों की आवाज तुम्हें सुनाई नहीं दी। क्या भूख से एड़ियाँ रगड़ते हुए नर कंकाल का रुदन तुम्हें अनुभव नहीं होता ?।

अगर इसका उत्तर है--हाँ।

तो फिर तुम्हें अपने उन्हीं पुराने आदर्शों से प्यार क्यों है ? उन जीर्ण-शीर्ण सिद्धांतों का क्यों पक्षपाती है आज तू ?

वातावरण से आज पुनः एक स्वर पर स्फुटित हो रहा है। तुम नहीं सुन रहे तो क्या हुआ। हम तो सुन रहे हैं। यद्यपि स्वर अभीम ध्यम है लेकिन उसका अभिप्राय कितना स्पष्ट है। जो कह रहा है।

अन्ततः इन लाखों-करोंड़ों नंगे-भूखों की रुहों से एक जोश भरा नारा बुलन्द होगा। वह जो क्रांति का अग्रदूत होगा--एवं नये समाज का निर्माता।

हम ही तो थे जिनकी भीषण हुंकारों से साम्राज्यवादियों के आसन डोल गये, उनके राज्य की नीवें हिल उठीं। भूलो मत आज भी हम वहीं हैं—जो उस समय थे। जिस खून से वक्त एक नये मजमून की कहानी लिखना चाहता है उसमें अभी उयणता शेष है। चाहे इन्सान आगे बढ़ेगा। ये युग की आवाज है। जनता की आवाज है। मेहनत कश ता का दृढ़ निश्चय।

रास्ते का काँटा

निर्मल ने टाई बांधी और कोट को कन्धे पर लटका कर जब दफ्तर जाने लगा तो दूसरे कमरे का गिरा हुआ पर्दा एक तरफ हटाकर शांति ने कहा ।

'आप जा रहे हैं ?''

'न जाऊं ?'

'यह मैंने कब कहा, जाइये मैं तो केवल कहना चाहती थी कि यदि हो सके तो शाम को शीघ्र आईयेगा ।'

निर्मल ने आँखे तरेर कर कहा—'ये सरकारी नौकरी है, घर की दुकान नहीं कि जब मन ने चाहा बन्द कर दी और जब चाहा खोलदी । आज तो वैसे भी लौटना कठिन है ।'

'क्यों ?'

'नये वर्ष का वजट लोक सभा में पेश होने वाला है—इसलिए लौटना कठिन ही नहीं असम्भव है ।

निर्मल ने झूठ का सहारा लिया । शांति खामोश हो गई और वह बस स्टैंड की ओर चल दिया । शान्ति ने सुख की साँस ली । क्योंकि आज की शाम भी बीते हुए रगीन एवं मधुर दिनों की भाँति उनका समर्थन कर चुकी थी ।?

निर्मल और शाँति का विवाह हुये दो वर्ष का समय व्यतीत हो चुका था । एक वर्ष तक तो निर्मल निश्चित समय पर दफ्तर जाता और संध्या को पाँच बजे ठीक घर लौट आता । घर लौटने के पश्चात दोनों कभी फिल्म देखने चले जाते, कभी इण्डिया गेट पर संध्या भ्रमण को

निकल पड़ते अथवा कनाट-प्लेस के रेस्टोरेन्ट में बैठ कर शाम व्यतीत करते।

लेकिन एक साल बाद निर्मल में धीरे-धीरे परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। वह अब निश्चित समय पर दफ्तर तो जाता था किन्तु शांति के अनुरोध करने पर भी बहुत कम समय पर लौटता था। कई बार शांति ने देर से लौटने का कारण पूछा, मगर हर बार निर्मल ने कोई न कोई बहाना बनाकर देर से लौटने का कारण उपस्थित कर दिया। जब वह अधिक विवश करती तो निर्मल गर्म हो जाता, वही गरमी हाथों में परिवर्तन हो जाती और निर्मल के कठोर हाथ शांति के कोमल शरीर पर मार-पीट का काम आरम्भ कर देते। अन्ततः काफी रात गये तक शांति के कमरे में से रोने की आवाज शांत वातावरण के हृदय में कोलाहल भर देती।

यद्यपि शांति अब भी जवान थी। उसके लाल-लाल अधर, भरा हुआ शरीर, गेहुँवा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें किसी को भी अपने तीरेनज़र का शिकार बना सकती थीं, मगर निर्मल के समीप वह एक बेकार आम की गुठली थी, जिसमें न अब रस था न आकर्षण और मादकता। प्रति मास आय का एक विशेष भाग वह 'सोसाइटी गर्ल्स' पर व्यय करता, जिनके साथ हर शाम वह घूमा करता था।

यह बात शांति को ज्ञात थी परन्तु वह मौन हो गई, इसलिए कि मौन रहने में ही उसने अपनी भलाई समझी, क्योंकि इस से पूर्व कई बार उसने निर्मल को प्यार और मुहब्बत का वासता दिया, अनुनय विनय की; जब नहीं माना तो रोई, चीखी और चिल्लाई, किन्तु व्यर्थ। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप निर्मल ने मार-मार कर शांति को अधमुआ कर दिया। इस घटना के बाद शांति ने उससे सब कुछ कहना सुनना छोड़ दिया। और शांति शांति की अभिलाषा लिए अनैतिक मार्ग की ओर अग्रसर हो गई।

प्रत्येक दिन की भांति आज भी आफिस की समाप्ति पर वह

कनाट प्लेस चला गया। सूर्य अस्त हो चुका था। रात्रि के काले साये उमांड रूपी युवती को अपने बाहुपाश में जकड़ने के लिए व्याकुल हो रहे थे। निर्मल आज किसी नए शिकार की तलाश में था। वेतन मिले अभी तो तीन रोज ही हुए थे। यदि वह चाहता तो पुराने स्थानों का आश्रय लेकर आज की शाम को रंगीन बना सकता था, पर आज उसकी दृष्टि किसी नए फूल का अन्वेषण कर रही थी।

चलते-चलते अकस्मात वह एक पान वाले की दुकान पर रुक गया। क्योंकि साथ वाली बजाज की दुकान पर एक लड़की हाथ में 'परस' लिये खड़ी कपड़ों को देखने में तल्लीन थी। निर्मल ने 'रेडी एण्ड व्हाइट' का एक पैकिट खरीदा और जला कर उसके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। निर्मल उस लड़की को खूब अच्छी तरह जानता था। नाम था अनीता।

अनीता के साथ निर्मल ने कई संध्यायें व्यतीत की थी। उसका सदयवहार निर्मल के प्रति यथेष्ट प्रणय का परिचायक था। यह प्रणय आत्मिक कम और शारीरिक अधिक था। इसलिए एक बार निर्मल ने अपनी पत्नी को तलाक देकर उससे विवाह करने का निश्चय कर लिया था। मगर अचानक न जाने वह कहाँ गुम हो गई थी। आज तीन मास के बाद वह उसको दिखाई पड़ी तो निर्मल ने उसके साथ आज की शाम गुजारने का फैसला कर लिया। उसने सोचा कि वह अनीता के साथ रात के बारह बजे तक रहेगा, उसके बाद वह घर चला जायेगा।

कुछ क्षण पश्चात 'अनीता' जब बाहर निकली तो सामने निर्मल खड़ा मुस्करा रहा था। अनीता नें भी जवाबी मुस्कराहट पेश की। दोनों ने हाथ मिलाया। एक दूसरे का समाचार पूछा। इधर-उधर की बातें कीं और फिर दोनों एक दूसरे का बाजू थामे 'रेस्टोरेन्ट' में दाखिल हो गए।

'केबिन' में बैठते हुए निर्मल ने बातचीत के अन्तिम वाक्य दोहराए।

अनीता! विवाह की आखिर इतनी जल्दी क्या पड़ी थी। अगर तुम्हारी बात मान भी ली जाय कि परिस्थितियाँ इस प्रकार की उत्पन्न हो गई थी कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, तो विवाह देहली की उपेक्षा शिमला में जाकर करने की क्या आवश्यकता आन पड़ी थी। विवाह यहीं पर होता तो हम भी शामिल हो जाते।

निर्मल ने यह बात इस ढंग से कही थी कि उसके पीछे कोई सहानुभूति अथवा अपनत्व की भावना नहीं थी। उत्तर में केवल एक मुस्कान तक सीमित रही और वह मुस्करा पड़ी।

चाय आई। दोनों ने पी। एक घण्टा पश्चात कुर्सी से उठते हुए अनीता ने कहा—

"चलिए! काफी देर हो गई बैठे हुए।"

"कहां··· ? कहां चला जाय ?"

"आपके विषय में तो मैं कह नहीं सकती कि आपका अगला प्रोग्राम क्या है। किन्तु मुझे आठ बजे घर पहुँचना है और अब साढ़े सात बज चुके हैं।

अनीता ने कलाई पर बन्धी हुई घड़ी को देखते हुए कहा।

"अगर आप जा रही हैं तो अगले प्रोग्राम की बात व्यर्थ है। हाँ, यदि आप ठहरें, तो बात बन सकती है।" निर्मल ने आशा और निराशा मुक्त स्वर में कहा।

अनीता ने कहा—"मुझे खेद है कि इस समय आपका साथ नहीं दे सकती।

निर्मल ने अधिक इस बारे में कुछ कहना या जोर डालना अनुचित समझते हुए अनीता की ओर हाथ बढ़ाया। दोनों के हाथ एक दूसरे से मिले और फिर अलग हो गये और दोनों विभिन्न दिशाओं की ओर चल दिये।

अनीता के चले जाने के पश्चात वह फिर पूर्व की भाँति एकाकी था। आधे घण्टे तक उसने चहल-कदमी की···आठ बज गये।

बिजली की फीकी-फीकी रोशनी में लहराते रेशमी आँचल—मीठे कहकहे, बेबाक और बफरा हुआ इश्क, सहमा-सहमा सा पुर गुरूर, एक दूसरे से टकराती आँखों के भाव-पूर्ण दृश्य चारों ओर समस्त वातावरण पर छाये हुए थे। निर्मल कई मिनट तक उन मार्मिक, भावपूर्ण एवं हृदय-स्पर्शी दृश्यों को देखता रहा। जब तबीयत कुछ उदास सी होने लगी तो उसके कदम 'बार' की तरफ उठ गए।

निर्मल एक घण्टे तक बैठा शराब पीता रहा तथा नंगा नाच देखता रहा। एक स्त्री—एक पुरुष—एक पुरुष—एक स्त्री। आरकिस्टा के स्वर चतुर्दिक विसर्जित हो रहे थे। उनके कोमल और कठोर शरीर भूमि पर थिरक रहे थे।

निर्मल ने कई बार सोचा कि वह उठकर 'बाल रूम डान्स' में सम्मिलित हो, मगर वह डान्स नहीं जानता था इसलिए उसे निराशा हुई। वह अपने स्थान पर हृदय पर पत्थर रख कर बैठ गया। लेकिन अधिक समय तक उस स्थान पर बैठना उसके लिए असम्भव सा हो गया। अतः वह 'बिल' चुका कर लिफ्ट के द्वारा नीचे उतर आया।

"टैक्सी।"

उसने लड़खड़ाते कदमों से अपने को टैक्सी के अन्दर गिरा दिया।

"किधर जनाब ?" ड्राईवर ने पूछा।

निर्मल ने पूछा "अभी तो नौ बजे हैं।, कहाँ जाये। घर के वातावरण से उसे घृणा हो गई थी। शराब का नशा वायु लगने से और तीव्र हो गया था।

निर्मल ने अचेत अवस्था में पूछा—"ड्राईवर ! कोई माल-वाल है।"

"है साहब···चलूँ"

"चलो ।"

कार तेजी से सड़क पर दौड़ने लगी। आखिर एक दो मंजिल ाली अट्टालिका के सामने जाकर रुकी । ड्राईवर ने खिड़की खोली। निर्मल उतर पड़ा। आगे-आगे ड्राईवर और पीछे-पीछे शराब के नशे में झूमता हुआ निर्मल चला जा रहा था। दोनों सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। सीढ़ियों में अन्धकार व्याप्त था। सीढ़ियाँ समाप्त होने पर दोनों एक बन्द दरवाजे के सामने जाकर रुके।

निर्मल सिगरेट सुलगाने लगा। ड्राईवर ने दरवाजा खटखटाया। एक बूढ़ी स्त्री का सिर बाहर निकला। ड्राईवर ने उसके कान में कुछ कहा। उसने भी कान में जवाब दिया और दरवाजा बन्द हो गया। निर्मल की ओर ड्राईवर ने घूरते हुए कहा—

"साहब ! लड़की बाहर गई है, दस बजे आवेगी। हमारे आने से पहले कोई दूसरा ग्राहक आया था, वह ले गया है।"

बात मामूली थी। निर्मल ने उत्तर नहीं दिया। जब दोनों वापस चलने लगे तो निर्मल के दिल में ख्याल पैदा हुआ। कि यहाँ की कोई निशानी देख ले. कभी कभी वह स्वयं यहाँ पर आता रहेगा। एक तो अँधेरा था, दूसरा शराब का नशा दिमाग पर छाया हुआ था। उसे कुछ दिखाई न दिया। मकान नम्बर को देखने के अभिप्राय से उसने 'माचिस' जलाई और उसके प्रकाश में दरवाजा देखा तो उस पर लिखा—

'मिस्टर निर्मल कुमार बी० ए०"

निर्मल का नशा उतर गया। पैरों तले से जमीन निकलती अनुभव हुई। दिमाग की रगें फटने लगी। निर्मल ने अपना सन्देह दूर करने के उद्देश्य से पूछा।

"ड्राईवर, तुम गलत स्थान पर तो नहीं ले आये।"

ड्राईवर ने आत्म-विश्वास के स्वर में कहा—"जी नहीं। इससे

पहले भी मैं चार बार यहाँ आ चुका हूँ।"

टैक्सी का बिल चुकाते हुए निर्मल ने पूछा—यह स्थान तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"एक दूसरे ड्राईवर ने बताया था।"

टैक्सी चल दी। निर्मल गुस्से की हालत में जलता भुनता जहरीला नाग बना पुनः सीढ़ियां चढ़ने लगा। दरवाजा खटखटाया। अन्दर से वही पहले वाली बूढ़ी स्त्री का सिर निकला। यह निर्मल की नौकरानी थी। सामने मालिक को खड़ा देखकर वह एकाएक सहम गई। चेहरे की झुरियों में भय की रेखायें उभरने लगीं। निर्मल ने पांव के बूट से दरवाज़े में ठोकर लगाई और भीतर चला गया।

चारपाई पर निर्मल का एक वर्ष का बच्चा पड़ा सो रहा था। एक कोने में नौकरानी खड़ी आने वाली मुसीबत की कल्पना कर थर-थर काँप रही थी।

निर्मल सिगरेट पर सिगरेट फूँक रहा था। आधे घण्टे बाद अर्थात ठीक दस बजे शाँति ने कमरे में प्रवेश किया। सामने निर्मल को देखकर पहले तो वह चौकी, फिर संभल कर बोली—

"आप इतनी जल्दी आ गए, मैं एक सहेली के साथ फिल्म देखने चली गई थी। खाना खाओगे, लाऊँ ? '

निर्मल चुप रहा। शाँति को बहाना बनाते देख उसके तन-बदन में आग लग गई और वह चीत्कार कर उठा।

"बेशर्म बेहया, रंडी, कमीनी बदमाश, मैं जानता हूँ कि तुम फिलम देखने गईं थी या किसी यार का पहलू गरमाने। मुझे मालूम न था कि तुमने घर को वेश्या का अड्डा बना रखा है।"

शांति समझ गई कि वह रहस्य जिसको उसने नौकरानी की सहायता से आज तक छुपाये रखा है अब प्रकट हो चुका है। उसने परिस्थिति का सामना करने की आवश्यकता से स्वाभिमान पूर्ण स्वर में कहा—"

"चलो, यह भी अच्छा हुआ कि आपको स्वयं ही सब कुछ मालूम हो गया। रहा प्रश्न कमीनी या रण्डी का, तो यह सब तुम्हारी वजह से हुआ है।"

निर्मल ने तिलमिला कर कहा—"मेरी वजह से यह सब किस तरह हुआ। मैंने तुमको कब कहा था कि तुम कमीनगी पर उतर आओ ?"

"तुमने जबान से चाहे नहीं कहा लेकिन तुम्हारा व्यवहार मेरे प्रति इस बात का साक्षी है कि समस्त पूंजी तुमने वेश्याओं पर लुटा दी। प्रत्येक मास का आधे से अधिक वेतन तुम बाहर की स्त्रियों पर बरबाद करते हो। उनको साथ लेकर फिल्म देखने जाते हो, शराब पीते हो, रात-रात भर घर नहीं आते। मैं पूछती हूँ कि क्या मैं स्त्री नहीं हूँ, मेरी भावनाएं नहीं हैं, मेरा हृदय माँस का न होकर पत्थर अथवा लोहे का बना है या मैं कानूनी तौर पर आपकी पत्नी नहीं हूँ। मेरा आपकी प्रत्येक वस्तु पर पूरा-पूरा अधिकार है। लेकिन जब मैंने देखा कि आपको मेरी जूती बराबर भी परवाह नहीं है, तो मैं ही घर में सिसक-सिसक कर क्यों मरती ? मैंने भी अपने लिए अलग रास्ता तलाश कर लिया।

निर्मल ने एक मिनट के लिए सोचा, वस्तुत: गलती स्वयं उसकी अपनी थी। अगर मैं स्वयं शाँति का तिरस्कार न करता, उससे उपेक्षा पूर्ण व्यवहार न बरतता तो आज ऐसी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न न होती।

मगर इस समय वह अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार नहीं था। क्रोध के वशीभूत होकर जब उसने शाँति को मारने के लिये डण्डा उठाया तो शांति ने बफरी हुई शेरनी की भाँति गरज कर कहा—

'तुम मारते हो तो मारो। मैं अभी सारी बिल्डिग को एकत्रित करती हूं। सभी तुम्हारे मुंह पर थूकेंगे। मेरा क्या है मैं तो औरत हूं, बदनामी होगी तुम्हारी।"

निर्मल ने परिस्थिति की भयंकरता को समझ लिया। क्योंकि

अगर वह मारता है तो हो सकता है कि शांति शोर मचाकर लोगों को एकत्रित कर ले। अगर वह खामोश रहता है तो शान्ति अपनी कलुषित प्रवृत्तियों का त्याग नहीं करती। उसने हाथ से डण्डा रखते हुए कहा—

"तुम चाहती क्या हो ?"

"मैं यही चाहती हूं कि हम दोनों समाज की नजरों में पति-पत्नि रहें। लेकिन दोनों को पूर्ण स्वतंत्रता हो कि जहां चाहे जायें और जो चाहें करें। एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप न करें।"

निर्मल ने कहा—"यह सर्वथा असम्भव है।"

"यदि यह सर्वथा असम्भव है तो तुम स्वयं परनारियों के पीछे घूमना छोड़ दो।"

"यह तुम्हारा भ्रम है। न मैं पहले कभी घूमता था और न अब घूमता हूं।" निर्मल ने झूठ बोला।

"यह बात तो मैं भी कह सकती हूं।"

"तुम्हारे कहने से क्या होता है। तुम अभी मेरी आंखों के सामने बाहर से आई हो।"

"बाहर से आना जुर्म नहीं।"

"मगर जहाँ से तुम आई हो, वहाँ से आना भीषण जुर्म है।

"लेकिन तुम स्वयं भी तो हर रोज वही जुर्म करते हो।"

"मेरी बात और है, मैं पुरुष हूं, तुम नारी हो।"

मैं पुरुष और स्त्री के इस झगड़े में पड़ना नहीं चाहती।"

निर्मल ने फिर सोचा, शाँति इतनी आगे बढ़ चुकी है कि उसको पीछे लाना अत्यन्त कठिन है। यदि बाहुबल द्वारा उनको पकड़कर पीछे लाया भी जाय तो वह पहले जैसी शिष्ट शाँति नहीं बन सकती। उसकी नैतिकता का पतन हो चुका है। उसके मस्तिष्क में एक तरकीब आई।

"मैंने एक बात सोची है।"

"बोलो।"

"हम दोनों पृथक हो जाएं।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

शान्ति ने यों उत्तर दिया, जैसे उसको यह बात पहले ही मालूम थी।

निर्मल ने कहा—"कल प्रातः मैं तुम्हें तलाक दे दूंगा। बिल्लू तुम्हारे पास रहेगा। प्रतिमास बिल्लू की रक्षा हेतु कुछ रुपये मनी-आर्डर कर दिया करूँगा।

शान्ति ने तिनक कर कहा—"न मुझे तुम्हारे बिल्लू की आवश्यकता है और न तुम्हारे रुपये की। तुम्हीं दोनों को अपने पास रखो।"

"तुम मां हो या डायन? बच्चे का भी प्यार नहीं।"

"तुम बाप हो या राक्षस? बच्चा तुम्हारा ही है। मैं उसको साथ ले जाकर अपना समस्त जीवन नष्ट नहीं कर सकती।"

निर्मल ने व्यंगपूर्ण हंसी होठों पर लाकर कहा—"बिल्लू तुम्हारी बिलासतापूर्ण जीवन की राह में कांटा जो है।

"ऐसा ही समझ लो।"

"तो तुम इसको समाप्त ही क्यों नहीं कर देती।

"तुम्हारे भी तो हाथ हैं। यह काम मेरे चले जाने के पश्चात स्वयं सम्पन्न कर डालना।

"तुम्हें बिल्लू को साथ ले जाना होगा—नहीं तो जला-जला कर मारूंगा।' निर्मल ने धमकी दी।

शान्ति ने उत्तर दिया—"तलाक देना है तो दो, नहीं देना न दो। जिन्दा रखो या मारो। लेकिन मैं बिल्लू को साथ नहीं ले जा सकती।"

"अगर नहीं ले जा सकतीं तो गला घोट दो। मैं इस माँस के लोथड़े को कहाँ उठाये फिरूँगा। हो सकता है यह भी तुम्हारे पाप का ही प्रतीक हो।"

"अगर यह मेरे पाप का प्रतीक है तो मैं इसको पास क्यों रखूं?"

यह कहकर उसने बिल्लू की तरफ देखा जो अब जाग उठा था और अंगूठा मुंह में लिए चूस रहा था। एक क्षण क लिए शान्ति के हृदय में मां का प्यार जाग उठा, दिल ने चाहा कि उठाकर अपने वृक्ष से लगा ले। पर दूसरे ही पल उसको नरेश के कहे हुए यह शब्द स्मरण हो आये—"तुब कभी भी अकेली आ सकती हो, हम दोनों पति-पत्नी के बन्धन में बन्ध जायेंगे। फिर हम दोनों शिमला चलेंगे और वहां जाकर मैं पिता जी से कह दूंगा कि मैंने एक कुंवारी लड़की से विवाह कर लिया है। शांति चक्कर में पड़ गई। एक ओर उसके हृदय का अभिन्न अंग था और समस्त जीवन के सुख। किसको छोड़े, किसको न छोड़े। अन्ततः मां की ममता हार गई और शान्ति अपने पुर्ववत निर्णय पर अटल रही

अचानक बिल्लू के चीत्कार करने का स्वर सुनाई दिया। दोनों ने देखा कि बिल्लू के मुख पर 'थीरी डी' की शीशी की दवा निकल कर फैल गई थी कुछ गले के अन्दर चली गई थी और कुछ बाहर निकल रही थी। हुआ यों था कि पास ही मेज पर जहरीली दवा की शीशी पड़ी थी। बिल्लू ने हाथ बढ़ा कर उठाली और उसको खिलौना समझ कर अपनी जबान से चाटने लगा। कार्क खुल गया। दवा निकल आई।

कुछ क्षण पश्चात बिल्लू ने तड़प तड़पकर दम तोड़ दिया। निर्मल और शान्ति पत्थर की प्रतिमा बने निश्चल खड़े थे। रास्ते का कांटा दूर हो चुका था।

गोदाम

उसकी अद्भुत तर्कशक्ति के कारण ही लोगों ने उन्हें "गोदाम" कहना शुरू कर दिया। वैसे किसी दो हाथ, दो पैर वाले आदमी का यह नाम उचित नहीं जच सकता। किन्तु अनेक उर्वर मस्तिष्क में जो निराली बातें भरी पड़ी थीं और उलझी से उलझी प्रत्येक समस्याओं को चुटकी बजाते हल करने का जो उनका विलक्षण ढंग था उसे देख कर उनके परिचितों को कहना पड़ा "यह तो ऐसा गोदाम है जहाँ हर बात का उत्तर है और हर समस्या का समाधान है।"

"गोदाम" की शिक्षा केवल पाँचवीं कक्षा तक ही थी किन्तु आधुनिक सभ्यता और आचार-विचार में वे इतने पारंगत थे कि बड़े-बड़े पहुंचे हुए लोग भी उनका लोहा मानते थे। "गोदाम" कहाँ के रहने वाले थे यह आज तक कोई न जान सका किन्तु मद्रासी के लिए वे मद्रास के, पंजाबी के लिए पंजाब के और बिहारी के लिए बिहार के थे। नये से नये आदमी के क्षण भर में वे इतने घनिष्ट बन जाते कि जैसे बचपन के साथी हों।

"गोदाम ने आज तक कहीं नौकरी की यह किसी ने नहीं देखा किन्तु उनके रहन-सहन का स्तर कभी नीचा नहीं रहा। वैसे "गोदाम" पत्रकार आलोचक, कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, भविष्यवक्ता, पर्यटक, नेता, डाक्टर एवं अभिनेता सभी कुछ हैं। इतने सारे कार्यों में जब किसी कार्य को निभाना पड़े वह इतनी आसानी से निभा लेते हैं कि इस बात में कोई शंका ही उपस्थित नहीं होती कि वे किसी फन के कच्चे खिलाड़ी हैं।

बहुत दिनों तक लापता रहने के बाद एकाएक एक दिन दिल्ली में उन्हे देख मैंने पकड़ लिया। बड़े प्रेम से मिले। यह पूछने पर कि इतने दिन कहाँ रहे, तपाक से बोले "भारतीय नाटककारों का एक प्रतिनिधि मंडल हाल ही में जापान गया था न, उसी के नेता के रूप जाना पड़ा।"

"पाँच मास जापान में घूमते रहे ?" सन्दिग्ध स्वर में मैंने पूछा।

बोले—नहीं जापान से स्वीटजरलैंड आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और कई स्थानों का भ्रमण किया।

'अब क्या कर रहे हो ?"

"खोज कर रहा हूं।"

"किस पर"

"एक नयी चीज है" गम्भीर से बनते हुए गोदाम बोले "मच्छरों का गूनगुनाना सुना है कभी ?"

"हाँ, हां रोज ही सुनता हूं" मैंने कहा।

"हां तो मैं यही सिद्ध करने जा रहा हूं कि यह बहुत बड़ा राग है और यह भी कि सब रागों की उपज मच्छरों की इसी गुनगुनानाहट से हुई है" गोदाम बोले। गोदाम से उलझना अपना समय नष्ट करना है यह समझ मैं नमस्ते करके चलपड़ा। उसके बाद तीन, चार मास तक गोदाम के फिर दर्शन नहीं हुए। काम की स्वयं भी इतनी व्यवस्तता रही कि मुझे ध्यान तक न रहा।

एक दिन मेरे एक साथी ने बताया कि 'गोदाम ने दरियागंज में एक आफिस खोला है और वे अच्छे खासे भविष्य वक्ता बन बैठे हैं। सोचा 'गोदाम' को इस बार फिर नया पागलपन सवार है। साथी के बताये पते पर देखा तो एक बोर्ड लटक रहा था जिस पर लिखा था 'जीवन की हर समस्या का क्षणभर में समाधान' 'प्रोफेसर ज्ञानी'। होठों की हँसी दबाते हुए चिक उठा कर भीतर गया।

तो देखा मुर्दे की एक खोपड़ी को सामने रखे उस पर जादूगरों की तरह एक हड्डी फिरा रहे हैं। मुझे देखते ही उन्होंने वह हड्डी मेज पर रख दी और ऐनक उतार कर बैठने का संकेत किया।

सामने की कुर्सी पर बैठते हुए मैंने कहा—'यार अब की बार यह क्या धन्धा ले बैठे ?'

तनिक मुस्काते हुए गोदाम बोले—'यह धन्धा नहीं है जनाब। यह ईरान की एक खोई हुई विद्या है। देखना थोड़े ही में मैं धूम मचा दूँगा।' अभी मैं कुछ कहने ही वाला था कि एक नवयुवती ने चिक उठा कर अन्दर प्रवेश किया। दुबली पतली किन्तु नाक नक्श से आकर्षक उस युवती ने पहले तो गौर से हम दोनों की ओर देखा, शायद वह इस द्विविधा में थी कि हम में से कौन प्रोफेसर ज्ञानी हैं और फिर वह पास की एक कुर्सी पर बैठ गई। लगता था जैसे वह तेजी से आई है इसलिए हाँफ सी रही थी

तभी गोदाम बोले—

"कहिए..."

मैं बड़ी आशाएं लेकर आपके पास आई हूं" लड़की ने सहमे स्वर में 'गोदाम' की ओर देखते हुए कहा।

"कहिये बेधड़क होकर कहिये।" गोदाम बोले। फिर मेरी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा" इनसे शरमाने की कोई बात नहीं हैं, ये मेरे असिस्टेंट हैं।"

"जी बात यह है कि······उस लड़की ने कहना शुरू किया···"जिस लड़के से मैं प्रेम करती थी वह ब एक धनवान लड़की से शादी करने जा रहा है..."

"ठहरिये..." बीच ही में बात काट कर गोदाम बोले। 'क्या नाम है उस लड़के का ?'

'जी नाम ?······नाम उसका है वीं० कुमार'

'हूँ, क्या करता है ?'

'बड़े घर का लड़का है' वह बोली।

'केस बड़ा संगीन है' गोदाम नाक पर चश्मा चढ़ाते हुये बोले 'उसकी मंगेतर पर उच्चाटन करके या तो उसे मारना होगा या आपके प्रेमी पर वशीकरण करना होगा।'

'यह काम हो भी सकेगा प्रोफेसर साहब ?' उस लड़की ने अधीर होते हुये पूछा ।

'यह तो समय बतायेगा।' गोदाम ने वह हड्डी हाथ में लेते हुए कहा 'फीस ५५) रुपये होगी ।' हड़बड़ाते हुए लड़की ने पर्स खोल और पचपन रुपये 'गोदाम' के हवाले कर दिये । गोदाम ने उन्हें जेब में रखते हुए एक संतोष की साँस ली और फिर वह हड्डी कई बार उस लड़की के सिर पर घुमा कर मेज पर रखी मुर्दें की खोपड़ी पर उसे मारते रहे । इस बीच जो कुछ वह गुनगुनाते रहे उसे वे ही समझ सकते थे । फिर एक ताबीज उसे देते हुए वे बोले—

इसे दाँये बाजू पर बांध लो और सोती दफा रोज चूम कर अपने प्रेमी का ध्यान करना । तब देखो वह तुम्हारे पैर चूमेगा । एक महीने बाद आकर बताना ।'

खुश होकर वह लड़की चली गई, तभी एक मौलवी साहब अन्दर आ गये । वालेकुम अस्सलाम के बाद उन्होंने अपनी समस्या बतानी शुरू की—

'किसी ने कहा है, औलाद नहीं तो जहान नहीं । दो बीबियाँ हैं, प्रोफेसर साहब । पर किस्मत का दरवाजा नहीं खुलता ।'

'ठीक है' गोदाम बोले '१०) रुपये फीस होगी ।'

'लीजिये हाजिर है' मौलवी साहब ने खुश होते हुए अपनी अचकन की जेब से दस रुपये निकाल कर मेज पर रखते हुए कहा ।

'सुनिये' गोदाम ने अपना मुँह मौलवी साहब के कानों के पास ले जाते हुए धीरे से कहा 'अपना इलाज कराइये, समझे ?'

मौलवी साहब को काटो तो खून नहीं । हक्के बक्के से वे गोदाम के मुँह की ओर ताकते रहे । गोदाम ने कुछ क्षण रुक कर उन्हें डाटा 'जाइये समय बर्बाद न कीजिये ।'

और समय होता तो मौलवी साहब जान को आ जाते पर कुछ बात ही ऐसी थी कि वे शर्माते हुए बाहर चले गये ।

उनके जाने के बाद मैंने कहा 'यार बड़ी कमाई कर रहे हो ?'

उत्तर में वे हंस पड़े। फिर काफी देर तक उनसे इधर उधर की बातें होती रही। चाय भी उन्होंने मंगाई। फिर मिलने का वादा कर मैं घर चला आया।

कुछ दिनों बाद जो फिर एक बार दरियागंज की ओर जाने का अवसर मिला तो सोचा लगे हाथों 'गोदाम' से ही मिलता चलूं। पर देख कर निराशा हुई कि 'गोदाम' के कार्यालय पर एक बड़ा सा ताला पड़ा मिला। वहाँ से उनका बोर्ड आदि भी हटा दिया गया था। आस पास में पूछने पर पता चला कि तीन मास से बराबर किराया न दे सकने के कारण 'गोदाम' का सारा सामान कुर्क हो गया। इसके बाद एक वर्ष तक गोदाम का कुछ पता न चला। धीरे धीरे मन से उनकी स्मृति भी उठने लगी।

इसी बीच मुझे किसी कार्यवश आगरा जाने का अवसर मिला। शाम का समय था, यों ही घूमते घूमते मैं बाजार की ओर निकल गया। एक स्थान पर काफी भीड़ देखकर मैं रुक गया। रंग ढंग देख कर यह समझने में देर न लगी कि कोई मजमें वाला है। बिना देखे ही मैं आगे को निकल गया पर वह आवाज कुछ जानी पहचानी सी लगी कोई जोर से गला फाड़ कर कह रहा था—"यह धोखा नहीं है भाइयो! और न ही मैं ऐसा पेशा करता हूं। महज १०८ बाबा कैलाशवासी की ५०० वर्ष की घोर तपस्या का वरदान पीड़ित भाइयों की भलाई के लिए बाँट रहा हूं···एक जमाना था जब लोग पांच-पाँच सौ वर्ष तक जीते थे पर एक आज का जमाना है कि औसत आयु ५० वर्ष से अधिक नहीं है। यह महात्मा जी का महान चमत्कार है जिसके सेवन से आप हजार वर्षों की आयु पा सकेंगे...।" इस मजमे वाले की बात को सुन कर मैं भी भीड़ चीर कर आगे बढ़ गया। मजमे वाले की बातें जितनी आश्चर्यजनक थीं उससे भी आश्चर्य मेरे लिए यह था कि वक्ता महोदय "गोदाम" थे। उन्हों ने इन दिनों दाढ़ी बढ़ा ली थी और सूट के

स्थान पर अब उन्होंने गेरुए वस्त्र धारण कर लिए थे। काफी देर तक मैं "गोदाम" को आँखें फाड़-फाड़ कर देखता रहा, फिर वहीं एक ओर कोने कोने में खड़ा हो गया। "गोदाम" ऊंची ऊँची आवाज में कहते जा रहे थे—आप केहेंगे कि वह क्या चीज है—लीजिए मेहरबान यह अद्भुत जड़ी आपके सामने है। इसकी कीमत ? कुछ भी नहीं, केवल आने जाने का खर्च आपसे लिया जायगा। केवल तीन रुपए—तीन रुपए।"

और देखते ही देखते "गोदाम" की जेबें भर गईं। मजमा समाप्त कर जब गोदाम चले जा रहे थे तो मैंने पीछे से एक धपका दिया। वह चौंक उठे उन्होंने मेरी ओर देखा तो उनके चेहरे पर वही चिर परि-चित मुस्कान खेल गई। हंसते हुए मैंने पूछा—क्यों उस्ताद यह धन्धा कबसे शुरू कर दिया। मुस्कराते हुए वह बोले—चलो पहले तुम्हें चाय पिलाएं यह सब तो चलता रहता है।

निरुद्देश्य

क्या पता आज वे बेचारे इस संसार में जीवित भी हैं या नहीं। उनका मेरे जीवन से कोई तीन वर्ष तक गहरा सम्बन्ध रहा और आज उनसे बिछुड़े हुए पूरे दस वर्ष होने को आये। वैसे दस वर्ष का समय कुछ कम नहीं होता किन्तु अब भी उनकी बातों से, जो मुझे बराबर याद आ जाती है उन्हें भूल पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य लगता है।

तब मैं कलकत्ते के एक दैनिक पत्र में कार्य करता था। एक दिन दोपहर के समय एक सज्जन आये। खादी की पैन्ट और खादी की ही बुश शर्ट पहने थे। आयु से यद्यपि तीस वर्ष के लगते थे किन्तु उनकी झुकी हुई कमर देखने से आश्चर्य होता था। उन्होंने बड़े ढंग से नमस्ते की और मेरे संकेत करने से पूर्व ही सामने खाली कुर्सी पर बैठ गये।

उसके पश्चात उन्होंने अपना जो संक्षिप्त परिचय कुछ देर में दिया उससे पता चला कि आप पाँच वर्ष से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हें। अब तक बीसियों उपन्यास और कहानी संग्रह लिख चुके हैं। कविताएँ भी प्रायः पत्र पत्रिकाओं में निकला करती हैं। उनसे बातों ही बातों में यह भी पता चला कि वे अपने असली नाम से नहीं लिखते उन्हें नाम की कोई भूख नहीं है लगभग एक घन्टे तक जिस खुले ढंग से उन्होंने बातें की वह वास्तव में मनोरंजक थीं और सच पूछिये तो तभी से वे मेरे खास मिलने वालों में से एक हो गये। उस दिन वे लगभग एक डेढ़ घन्टा मेरे साथ बैठकर फिर कभी आने का वादा करके चले गये।

उसके दो मास बाद एक दिन अचानक कलकत्ते के एक रेस्टोरेंट में भेंट हो गई बड़े प्रेम से मिले। बैरे को उन्होंने स्वयं चाय का आर्डर

दिया और कुछ खाने की चीजें भी मंगवायीं। इस बीच जब उनके दो महीने तक न मिलने की मैंने शिकायत की तो आपने बड़ी ही नम्रता के स्वर में क्षमा प्रार्थना की और कारण यह बताया कि वे मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिकोत्सव पर अध्यक्षता करने गये थे। जहां तक मुझे स्मरण था उस सम्मेलन की अध्यक्षता उसी प्रदेश के एक सुप्रसिद्ध साहित्यिक ने की थी। अपनी शंका जब मैंने उनके समक्ष रक्खी तो उन्होंने चेहरे पर बिना किसी प्रकार का परिवर्तन का भाव लाये उत्तर दिया।

"मेरा मतलब आप समझे नहीं। सम्मेलन के अध्यक्ष वे ही थे, मैंने कहानी गोस्टी की अध्यक्षता की थी। और फिर उनके सुखे से चेहरे पर एक मुस्कान खेल गई। चाय आ गई थी। इस बीच हम दोनों चाय भी पीते रहे और बातें भी होती रहीं। बातों का विषय मुख्य में यही था कि सम्मेलन में कैसी चहल पहल रही और उनकी अध्यक्षता में कहानी गोष्ठी कितनी सफल रही। उन्होंने एक कहानी भी सुनाई, मुझे स्मरण आया कि वह कहानी पहले मैंने अवश्य कहीं पढ़ी है। इस बार पुनः शंका उपस्थित हो गई थी। मैंने बहुत चाहा कि बात दबा जाऊँ किन्तु न चाहते हुए भी बात मुँह से निकल ही गई। फिर भी बड़े ही संयत स्वर में मैंने पूछा:—

"लगता है इससे मिलती हुई कोई कहानी मैं पहले भी कहीं पढ़ चुका हूं।"

उनका चेहरा उतर सा गया किन्तु उन्होने अपने को शीघ्र ही सम्हालते हुए कहा "आप ठीक कहते हैं। आज से तीन साल पहले मैंने यह कहानी लिखी थी। इसकी इतनी प्रशंसा हुई थी कि कई पत्रों में यह छपी थी। उसके एक साल बाद......नामक लेखक ने उसके नाम और और पात्र बदल कर मेरी यही कहानी......पत्र में प्रकाशित कराई। शायद आप को याद भी होगा मैंने उन पर तथा उस पत्र पर केस दायर कर दिया था, समाचार पत्रों में भी यह खबर छपी थी।" चाय की

चुस्की लेकर उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, जैसे वे यह तौलने की चेष्टा कर रहे थे कि उनकी बातों का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। उत्सुकतावश मैंने पुनः प्रश्न किया—"तो, उसका निर्णय किसके पक्ष में रहा ?"

सिगरेट का एक लम्बा सा कश लेते हुए उन्होंने उत्तर दिया—"अजी साहब फैसला मेरे पक्ष में हुआ। प्रकाशक ने क्षमा याचना के बाद पाँच सौ रुपये क्षति पूर्ति के रूप में दिये थे और लेखक महोदय ने तो मेरे पैर

ही पकड़ लिये थे। अपनी पत्नी और बच्चों का हवाला देते हुए उन्होंने मुझे इतना द्रवित कर दिया कि कोई और होता तो कभी क्षमा न करता पर साहब, मुझे न जाने क्या हो गया था, मैंने उन्हें क्षमा किया सो किया पर उसने जेब से दो सौ रुपये भी दे डाले। यह खबर तो प्रायः तमाम अखबारों में छपी थी और तब से यह कहानी इतनी प्रसिद्ध हुई कि इस बार "कहानी गोष्ठी" में लोगों ने मुझे उसको सुनाने पर बाध्य किया।

मैं कुछ निर्णय नहीं कर सका उनके बारे में, किन्तु जितनी भी बातें वे कहते वे इतनी प्रभावशाली होतीं कि सन्देह करने की कोई बात ही नहीं रह जाती। बहुत सारी और ऐसी ही बातें हुईं और फिर हम दोनों उठ गये। काउन्टर बिल के पैसे चुकाने के लिए ज्यों ही उन्होंने अपनी बुशशर्ट की ऊपरी जेब में हाथ डाला त्यों ही उनकी मुख मुद्रा इतनी तेजी से बदली कि कुछ न पूछिए। उन्होंने जल्दी जल्दी अपनी सारी जेबें छान मारीं—फिर पेंट की पिछली जेब तक की तलाशी ली। इस बीच उनकी आँखों में एक निराशा का भाव झलक रहा था, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी के जीवन भर की पूँजी लुट गई हो। उनको इतना परेशान देख कर मैंने पूछा"क्या खो गया "विकल जी ?" वे अपना यही नाम बताया करते थे।

"क्या बताऊं साहब। मैं तो कहीं का भी न रहा। तीन-सौ रुपये थे पर्स में न जाने किसने मार लिये। अब तो महीने भर तक कहीं से

भी पैसे आने की आशा नहीं।' उन्होंने विवसता के स्वर में उत्तर दिया। उन्हें दिलासा देते हुए मैंने बिल चुकाया और सड़क पर हम दोनों दूर तक साथ चले। पाँच रुपये उन्हें और भी मुझे देने पड़े—जो कि उन्होंने परसों तक के लिए कह कर लिए थे।

उसके बाद तीन सप्ताह तक उनके दर्शन नहीं हुए। तीन सप्ताह बाद जब एक दिन वे मेरे कार्यालय में आये तो उनके हाथ में एक उपन्यास था। जिसमें लेखक के स्थान पर किसी अन्य का नाम था उनका न था किंतु उन्होंने मुझे वही पुरानी बात फिर से याद दिलाई कि वे वास्तविक नाम से कभी नहीं लिखते। उस दिन मैंने बहुत समझाया कि वे अपने वास्तविक नाम से लिखा करें। साहित्यक के पास यही तो एक निधि होती है—कभी उन्हें साहित्य जगत शरत और प्रेमचन्द की भाँति याद तो किया करेगा। किन्तु उन्होंने यह बात (हंसकर) टाल दी। छुट्टी के बाद जब हम दोनों सड़क पर निकले तो उन्होंने मुझसे अचानक एक ऐसा प्रश्न कर डाला कि जिसे सुनकर मुझे आश्चर्यान्वित हो कर रह जाना पड़ा उन्होंने पूछा था कि सच्चा प्रेम सफल होता है या नहीं। बहुत सीधी सी बात थी पर उन्होंने यह प्रश्न बड़ी गम्भीरता से पूछा था। अपनी समझ के अनुसार मैंने उसका उत्तर तो दे दिया पर यह उत्कंठा मेरे मन में अन्त तक बनी रही कि इन्होंने यह प्रश्न इस कुसमय क्यों किया किन्तु बाद में शरमाते हुए बड़ी कठिनाई से वे केवल इतना बता सके थे कि गोबरा रोड में उनसे एक बंगाली लड़की प्रेम करती है। इसके बाद वे एक बार मुझे गोबरा रोड तक ले भी गये थे। भले ही उस लड़की को देखने का अवसर मुझे नहीं मिल सका परन्तु एक पीले से तीन मंजिले मकान की ओर उंगली उठाते हुए उन्होंने बताया था कि यही उस लड़की का मकान है।

इन दिनों वे प्राय: उदास रहा करते थे और जैसा कि प्राय: प्रेम की कहानियों में पढ़ने को मिलता है कि "नायक खोया खोया सा रहता था। उसके बाल बिखरे रहते और वह शून्य की ओर आँख गड़ाए

घण्टों देखता रहता"—यही हालत उनकी भी थी। मैं इन दिनों उन्हें बहुत समझाया करता कि इस प्रकार की परेशानी आदमी को बीमार बना कर रख देती है, वे ऐसा न करें किंतु वे उस समय आकाश की ओर ताकते हुए एक ठंडी साँस छोड़ देते या बहुत हुआ तो गालिब का एक दर्द भरा शेर गुनगुना देते।

उनका निवास स्थान कहाँ है यह जानने की मैंने बहुत बार चेस्टा की किंतु वे इधर उधर की बातों में प्रसंग ही बदल देते। एक दिन बहुत पूछने पर उन्हों बताया था कि वे बीडन स्ट्रीट पर एक मकान में रहते हैं। कभी ले चलने का वादा भी उन्होंने किया किंतु वह वादा आज तक पूरा नहीं हुआ। उनके भोजनादि की व्यवस्था के बारे में एक दिन जब मैंने कुछ जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि वे हरीसन रोड के एक मारवाड़ी बासे में साठ रुपया महीना देते हैं।

एक रोज शाम के समय सिंधी बगान के बाहर एक छप्पर के तले बने होटल में उन्हें खाना खाते देखा तो मैं चकित हो गया। यह होटल सिंधी बगान के बाहर एक ऐसी जगह पर स्थित है जहाँ खाना बदोश फुटपाथ पर डेरा डाले पड़े रहते हैं।

होटल के चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं—कहीं चावल बिखरे पड़े थे और कहीं दाल गिर कर जमीन पर ही सूख गई थी। वहीं एक कोने पर बैठे हुए वे एल्यूमिनियम की टेढ़ी सी थाली में चावल और दाल खा रहे थे। आँखों को सहसा विश्वास नहीं आया किन्तु जो सामने था वह स्वप्न तो नहीं था। मन ही मन मैंने सोचा वे तो हरीसन रोड पर एक मारवाड़ी बासे में खाने की बात कर रहे थे—तो क्या यह सब झूठ था? बहुत कुछ सोचने पर भी मैं निर्णय न कर सका कि वे असत्य क्यों बोल सकते हैं, अन्तत: किसी निर्णय पर जब दिमाग न पहुँचा तब इस बात को अनिर्णीत छोड़ कर मैं चीतपुर रोड की ओर निकल आया।

घर को वापस लौटती बार मैं अपने को न रोक सका। अनचाहे ही पैर सिन्धी बगान की ओर मुड़ गये। उस होटल पर जा कर देखा तो वे वहां नहीं थे। होटल वाले से उनके बारे में पूछा तो उसने बताया कि वे यहीं खाना खाते हैं और उसने ऊपरीटाँड की ओर इशारा करते हुए बताया कि यह उनका विस्तरा है रात को सोते भी यहीं हैं। हैरान होता हुआ सा मैं चला आया। सारे रास्ते भर उनके ही–बारे में सोचता रहा कि यह किस तरह के व्यक्ति हैं, जिनकी प्रत्येक बात रहस्यमय है प्रत्येक गतिविधि के बाहर एक पर्दा पड़ा है।

एक दिन पता चला कि उनको एक वर्ष की जेल हो गई है। उन पर एक लेखक ने आरोप लगाया था कि उसका प्रकाशित उपन्यास इन्होंने नाम और पात्र बदल कर किसी अन्य प्रकाशक को देकर धोखा-धड़ी की है। अपनी सफाई में विकल जी ने कुछ न कहा। वे चुपचाप सरकारी वकील के आरोप प्रत्यारोप सुनते रहे। बीच-बीच में वे इधर उधर देख लेते और फिर नजरें नीची कर के वास्तविक अपराधी की भांति गर्दन नीचे को झुका लेते। मुझे उनके होटल के द्वारा ही इस बात का पता लगा था उत्कंठा को न दबा सकने कारण उनकी सजा वाले दिन मैं अदालत जाने से अपने को न रोक सका। सरकारी वकील की दलील पेश हो जाने के बाद दो एक गवाह और पेश हुए जिनमें से एक ने बताया कि इन्होंने एक मास तक उसे इस धोखे में रक्खा कि उनकी वहां के सब मंत्रियों और उच्च अधिकारियों के साथ काफी घनिष्टता है। वे हर तीसरे दिन उसे राइटर्स बिल्डिंग ले जाते थे और शाम को किसी न किसी बहाने से वापस लौटा लाते थे। इस प्रकार वह एक मास तक इनके धोखे में निरर्थक चक्कर काटता रहा। उससे जब प्रश्न किया गया कि उसे आर्थिक रूप में कितनी क्षति इनके कारण हुई तो उसने इससे इन्कार किया बल्कि बताया कि ट्राम, बस के खर्च के अतिरिक्त चाय आदि में जितना भी व्यय हुआ वह सब उनकी अपनी जेब से।

एक और भी गवाह पेश हुआ जिसने ऐसी ही दूसरी बात बताई इन बातों से स्पष्ट था कि वे जो कुछ भी करते थे, जिसे भी आश्वासन देते थे अपना समय और धन बर्बाद करते थे। आश्वासन देना उनकी आदत बन गई थी, किन्तु आश्वासन कोई भी पूरा नहीं होता था किसी का उन्होंने लिया न था बल्कि उस पर कुछ खर्च ही किया था रही इस किताब की बात , सो उसमें तो वे साफ दोषी थे। अत: किताब की धोखाधड़ी के आरोप में उन्हें एक वर्ष की सजा हो गई।

कान्स्टेबल जब उन्हें कैदी गाड़ी की ओर ले जा रहे थे, लपक कर मैं उनके आगे हो गया। कान्स्टेबिल कुछ देर अनुरोध पर रुक गए। मुझे देखते ही उनके चेहरे पर वही चिरपरिचित मुस्कान खेलने लगी। दोनों हाथों से नमस्ते करके उन्होंने उसी तरह मेरी ओर देखा जैसे कि प्राय: वे पहले कोई नई बात कह जाने के बाद मेरी ओर देखा करते। धीरे से मैंने कहा "यह क्या हो गया विकल जी ?"

दृढ़ता से उन्होंने उत्तर दिया "यह कोई असाधारण बात नहीं है वर्मा जी ! जिनका जीवन आरम्भ से ही निरुद्देश वातावरण में ढल जाता है उनके प्रत्येक काम निरुद्देश होते हैं-वे जो कुछ भी करते हैं सब निरुद्देश। जिस काम का कोई आधार न हो उसका अन्त बहुधा ऐसा ही होता है। मैं भी आज तक इसी पथ का पथिक रहा हूं फिर यदि आज उसका अन्त ऐसा हुआ तो कोई दुख की बात नहीं है।"कुछ रुक कर उन्होंने पुन: कहा "पर मैं आपको भूल न सकूँगा—इस सूखे से जीवन में आपके साथ जो समय मेरा बीता वह ऐसे कट गया जैसे उसकी कोई गिनती ही नहीं है यदि कभी मेरे कारण आप को कष्ट हुआ हो तो क्षमा कर दीजिएगा। चेष्टा करूँगा कि इस बार उद्देश्य की ओर बढ़ूँ अन्तिम बात कहते कहते उनकी आँखों की दोनों कोरें गीली हो गई थी किन्तु तभी उन्होंने दूसरी ओर मुड़कर उनकों छिपा लिया था--गाड़ी में चढ़ते समय यद्यपि उनकी आंखों से कुछ बूँदें जमीन पर ढुलक गयीं थीं

किन्तु चेहरे पर वही चिरपरिचित मुस्कान खेल रही थी। सामने सड़क परएक पागल ट्राफिक कंट्रोल का पार्ट अदा कर रहा था--उसे कोई वेतन तो मिलता नहीं, उल्टे खाने को सूखी रोटीभी नहीं मिल पाती, फिर यह क्यों निरर्थक श्रम कर रहा है ?

यही प्रश्न मैं अपने आप से कर रहा था।

सदावर्त के कीड़े

चौरंगी पर एक छोटी सी सड़क के पास बड़ी भीड़ जमा थी। आस पास सफेद वर्दी पहने बिहारी पुलिस के पांच सात जवान खड़े लोगों को इधर उधर हटा कर रास्ता कर रहे थे। उनके सर पर लनी लाल पगड़ी में लगे काले धागों की झालर तब हिल जाती, जब वे बगल में मोटा सा बाँस दबाए इधर से उधर निकलते। बड़ी भीड़ थी, और उस भीड़ में प्राय: सारे के सारे चौरंगी फुटपाथों पर पड़े रहने वाले भिख-मंगों की फौज थी। केवल चौरंगी के ही नहीं बल्कि बड़ा बाजार और राजेन्द्र मल्लिक की कोठी के नीचे पड़े रहने वाले वे सारे भिखमंगे भी आज यहीं दिखाई दे रहे थे। जिन्हें नित्य राजेन्द्र मल्लिक की कोठी के बाहर नियमित रूप से मुफ्त में खिचड़ी मिला करती थी। इधर जब से नगर में राशनिंग चल पड़ा तब से वहाँ भी खिचड़ी बंटनी बन्द हो गई। उन दिनों एकाएक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि जगन्नाथ घाट और नीमतल्ला घाट पर जहाँ प्रातः ही भिखमंगों की टोली...माई तेरा सपूत जुग-जुग जीवे"—"सेठ तेरा घर सदा भरा रहे" कह कर सेरों अनाज बाँध कर दोपहर को घर लौटआती थी, वहीं अब दोपहर तक गला फाड़ कर चिल्लाने पर भी उन्हें छटाँक भर दाने मुयस्सर न होते।

ऐसे समय में चौरंगी के पास की उस गली में भिखारियों की इतनी बड़ी भीड़ देख कर आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था। उससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि वहाँ एक कोठी पर भिखारियों को शुद्ध डालडा बनस्पति के तले हुए पराठे बँटने वाले थे। तीन छटाँक राशन वाले इस जमाने में सौ-सवा सौ भिखरियों की टोली को पराठे खिलाना कोई साधारण बात न थी।

उस दिन दिन निकलने से भी पहले से वहाँ भिखारियों की भीड़ जमा होने लगी थी, और अब दोपहर के बारह बजने जा रहे थे, अभी तक उन

लोगों की भगवान ने नहीं सुनी थी। उस समूह की आँखें तीन मंजिले गोपाल भवन के बड़े दर्वाजे की ओर ऐसे ही लगीं थीं, जैसे सावन की अधसूखी फसल आकाश की ओर देखती खड़ी होती है, जैसे वर्षा की बूँदों का उसे अधीरता से इन्तजार हो। उनमें युवकों के खंडहर जैसे शरीर ऐसे लगते थे जैसे किसी सुन्दर से मकान की छत उखाड़ कर उसका वरूप विकृत कर दिया गया हो' उनकी नंगी छांती में खादर की सूखी जमीन में पड़े गड्ढे जैसे और उनकी आँखें बस केवल एक निशान जैसी रह गयीं थीं। जिनसे अनुमान होता था कि इन गड्ढों के स्थान पर कभी अवश्य आंखें रही होंगीं। बीच बीच में खड़ी भिखमंगी औरतों में कुछ ने कंकाल जैसे कुछ मांस के बोलते लोथड़े अपनी छाती से चिपका रक्खे थे। उनके चेहरे पर ढेर सारी धूल की पर्त पुती हुई थी और नाक से बहने वाली गंदगी स्थन पान करते समय उनके मुँह में ही जाती थी। कभी कभी जब अपनी मां के स्तन में वे जोर से दांत काट लेते तो क्रोध से वह उसे परे फेंक देती और वह चीखता रह जाता।

कभी कभी कोई बूढ़ा आदमी जोर जोर से खाँस कर पास ही बलं-गम के लोथड़े थूक देता, इस क्रिया में उसके छींटे औरों पर भी आन पड़ते—भिखारियों की भीड़ मन ही मन उससेबहुत चिढ़ जाती पर कुछ ही—देर में सब की आँखें फिर गोपाल भवन के दर्वाजे की ओर लग जातीं।

साम्ने मैट्रोपोलिटन बिल्डिंग के गुम्बज पर लगी घड़ी का कांटा एक पर आ गया था, पर अभी तक पराठे तो क्या उनकी गन्ध भी उनसे दूर थी। और कोई जगह होती तो शायद वे लोग अब तक चले जाते किन्तु "लफर भाई जफर वाला कम्पनी" कोई छोटी मोटी फर्म न थी, इससे सब आशा लगाये बैठे थे। कई ने अनुमान भी किया था कि कम से कम तीन-तीन पराठे तो मिलेंगे ही और, साथ में कुछ मसाले वालीसब्जी भी जरूर होगी कुछ अपने होंठ चट करे और पराठों की कल्पना में डूब गये

उन्होंने अपनीऔरतों को कह भी दिया कि उसे जो कुछ भी मिले वह सम्हाल कर रखले, घर चल कर खाया जाना ठीक रहेगा। यह घर भले ही फुट पाथ के नीचे हो, पर था तो घर ही-न जाने उस खुली जगह से उन्हें क्यों इतना मोह हो गया था कि उसे वे भूल से अपना घर समझने लग गये थे—

कुछ उनमें से बातें भी करने लगे थे। शायद एक दूसरे से कह रहा था कि जो उसे यह पता होता कि यह आठ घन्टे तपस्या करनी पड़ेगी तो अब तक वह सत्यनाराण पार्क के आस पास घूम फिर कर इतना कुछ तो ले ही आता जिससे पानी पीने का सहारा तो होता—

तभी शायद दूसरे ने अपने कान में लगे एक बीड़ी के टीटे को निकाल कर माचिस के लिये इधर उधर आंखें दौड़ाते हुए कहा

"वहां भी आजकल कुछ पल्ले नहीं पड़ता। परसों सारे दिन बैठा रहा पर कसम दे दो जो छटांक भर भी चावल पल्ले पड़ा हो।"

उधर कोने में एक औरत की गोद में छोटा सा बच्चा पुक्का फाड़ कर रो रहा था और उसकी मां उसको चुप कराने के लिए उसके मुँह में अपने सूखे स्तन ठूँस देती थी—पर काफी जोर लगाने पर भी वह उनमें से एक बूँद भी दूध न पाता तो वह और चीख उठता और उसकी चीख के शोर में भिखमंगों की उस टोली में चख-चख खोकर रह जाती।

घड़ी की सुई अब डेढ़ पर थी और उन लोगों का धैर्य धीरे-धीरे जवाब देने लग गया था—आँतें कुलबुलाने लगीं थीं—ओठों का गीला पन सूख गया था और क्षण प्रतिक्षण उनमें से कोई न कोई उठ कर गोपाल भवन के दर्वाजे की ओर ताकने लगता। सब को लगा जैसे अब पराठों से भरी टोकरी आने ही वाली है, अभी सब की लाइन ठीक की जायगी ...और फिर तीन-तीन चार-चार पराठे उनके टीन के डब्बों में डाल दिये जायेंगे।—कई जो अब तक सोंचते थे कि अपने बसेरे पर लौट कर आराम से पराठे खायेंगे और उनमें से कुछ शाम तक के लिये रख

छोड़ेंगेऐसी ही बातें सोचते हुए वे सब अशक्त से होते जा रहे थे फिर भी वे पराठों के काल्पनिक आनन्द में डूब से गये।

गोपाल भवन के दर्वाजे के पास एक लम्बा तडंगा दरबान, अपनी नुकीली मूँछों पर ताव देता हुआ धीरे-धीरे बाहर को आ रहा था। उसकी पीली वर्दी में जयपुरी साफा खिलता था और कमर में बंधी चमड़े की पेटी अब तक चमक मार रही थी शायद उसमें अभी अभी पालिश किया गया होगा। उसने दर्वाजे पर खड़े होकर एक बार भिखमंगों की उस भीड़ की ओर दृष्टि डाली—वह दोनों हथेलियों में सुर्ती मल रहा था, और उसकी धूल उड़ाने के लिए जब वह ताली बजाता तो सुर्ती और चूना मिली हुई वह धूल उड़ कर भिखमंगों में जा पहुंचती। इससे कई एक तो छींकते-छींकते हाँफ से जाते और कुछ एक की आँखों में पानी आ जाता। दरबान के लिए जैसे यह बात कोई महत्व नहीं रखाती थी।

तभी एक भिखारी औरत ने उससे गिड़गिड़ाते हुए कहा "दरबान बाबू रोटी कब मिलेगी ?

"क्या पता कब मिलेगा। बाबू को पता है, हमको नहीं" दरवान ने उसकी ओर घृणा से देखते हुए कहा। जैसे उसकी दृष्टि में यह सारा समूह एक गोबर का ढेर मात्र हो। वह भीतर चला गया। सैकड़ों आंखें उसे देखती रहीं,वह औरत अब दूसरी ओर खड़ी अन्य औरतों में बैठ गई थी, जहाँ दो-तीन औरतें अपनी कमर के पास वाले साड़ी के हिस्से को पलट कर जुएँ निकाल निकाल कर बड़े चाव से उन्हें मारने में व्यस्त थीं। उन सब में धीरे-धीरे बातें भी होती जा रहीं थीं जिनका मुख्य विषय भीख पर ही केन्द्रित था। कुछ पहले के दिनों की याद कर कर के इस जमाने को कोस रहीं थीं, और कुछ जो पहले जगन्नाथ घाट पर बैठ कर इस समय तक पाँच-पाँच सेर अनाज ले आतीं थीं तब की चर्चा कर रही थीं।

घड़ी ने दो बजाए। सामने सड़क पर आने जाने वाले लोगों की भीड़ यथावत थी। गोपाल भवन से एक आदमी जिसने बारीक सी एक

धोती पहन रक्खी थी कन्धे पर अंगोछा लिए नीचे उतरा। भीड़ में आशा का संचार हुआ। यह अवश्य रसोइया महाराज होगा, सब का अनुमान था। था भी वही। सब भिखारी पंक्ति बद्ध खड़े हो गये। कुछ ने स्वयं प्रयत्न करके लाइन को सीधी करना शुरू कर दिया। उनके चेहरे अब प्रसन्नता से चमकने लग गये थे, महाराज तो आ ही गये थे, अब तो पराठों का टोकरा लिये ऊपर से केवल कहार के आने भर की देर थी।

तभी महाराज ने फाटक पर खड़े होकर कहा "तुम लोग आज जाओ। पराठे अब मंगल को बटेंगे।"

"पर, हम लोग तो यहाँ सुबह आठ बजे से भूखे खड़े हैं।" एक बूढ़े से व्यक्ति ने अपने भूखे पेट की ओर इशारा करते हुए कहा, उसकी हड्डियाँ साफ गिनी जा सकती थीं।

रसोइया महाराज ने लाल पीले होते हुए कहा "तो हरामजादो हमारे ऊपर कोई अहसान है ? खड़े हो तो होगे। वैसे ही कहीं खजाने तो नहीं खोदते, वहाँ भी कहीं खड़े ही रहते। चलो अब मंगलवार को आना।"

एक दूसरे ने कहा पर हुआ क्या महाराज पंडित ?" उसका आदर पूर्ण सम्बोधन सुन कर रसोइया महाराज इतने क्रोधित नहीं हुए। साधारण ढंग से उन्होंने कहा—

"मुनीम जी का आर्डर है," और गोपाल भवन का फाटक बिना कोई आवाज किये बन्द हो गया।

कुछ देर तक वे सारे, वहीं खड़े रहे—कुछ सोचा भी उन्होंने। फिर धीरे धीरे सब चारों ओर को छिटक गये, जैसे तेज हवा चलने से बरसात के बादल छिटक जाते हैं।

जुर्माना

दिल्ली के सौन्दर्य का वर्णन आज तक बड़े बड़े साहित्यकार करते करते नहीं थके हैं। अक्सर यह देखा गया है सभी नई दिल्ली की बहारों में खोकर उपेक्षिता पुरानी दिल्ली को भूल ही जाते हैं। यदि भूल कर कोई पुरानी दिल्ली को अपने वर्णन में लाने की चेष्टा करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है जैसे दूध में आरोठ मिला दिया जाता है। किन्तु यह कहना असंगत नहीं जान पड़ता कि पुरानी दिल्ली को नयीं दिल्ली कहा जाये। वहाँ लोग सुगन्धित इत्र के स्थान पर बदबूदार नालियों के अब आदी से हो गये जान पड़ते हैं।

ऐसा ही पुरानी दिल्ली में एक स्थान ऐसा भी है, जो हमें पेरिस की भैभव की याद दिला जाता है। पुरानी दिल्ली और नई दिल्ली को मिलाने का सौभाग्य इस स्थान की प्रसिद्ध सड़क फैज बाजार को प्राप्त है। विदेशों से आने वाले प्रत्येक प्रमुख व्यक्ति, मन्त्री गण और राजदूतों को इसी मार्ग से लाल किले लाया जाता है। पुरानी दिल्ली के नुक्कड़ पर बसे हुए लाल किले को दिखाकर ही विदेशियों की कारें वापिस ले जाई जाती हैं, यदि बहुत हुआ तो एडवर्ड पार्क के पास से निकाल कर सीधे जामा मस्जिद दिखा दी जाती है, फिर वही फैज बाजार और नयी दिल्ली का रास्ता सामने आता है। बेचारी पुरानी दिल्ली के ऐसे भाग्य कहां, जो उसकी ओर कोई देखे। दरियागंज ने पुरानी दिल्ली की लाज रक्खी हुई है—जहाँ हम आपको एक संक्षिप्त सैर के लिए ले चल रहे हैं।

सन्ध्या का समय है। ज्यों ही हम लाल किले की ओर से पुरानी दिल्ली की ओर मुड़ते हैं, तो हमें नीले-नीले प्रकाश की चकाचौंध और विभिन्न रंगों के विद्युत लट्टाओं का एक आकर्षक नयनाभिराम दृश्य सहसा अपनी ओर खींचने लगता हैं। हम पुरानी दिल्ली को भूल कर उस ओर चल पड़ते हैं। चौड़ी सड़क और रंगीन शमा हमें जैसे बेहोश कर देता है। बस स्टैन्ड पर यात्रियों की कतारें लाइन लगाये खड़ी हैं। एक बड़े मियां अपनी दाढ़ी सहलाते हुए, अपनी ही आयु के एक सिन्धी लालाजी से बस व्यवस्थापकों की अव्यवस्था की चर्चा करते दिखाई दे रहे हैं। उनके पास ही एक महाशय सब की बातों को अनसुनी सी करके अपने दाँतों की जड़ में दियासलाई की तीलियों से प्रहार करने पर तुले हैं। कुछ नवविवाहित जोड़ें पास पास सटे हुए आपस में कानाफूसी करने में व्यस्त हैं। बस की प्रतीक्षा हो रही है, परन्तु दिल्ली की बसें तो ऐसे ही आया करती हैं।

पास ही की बात है। जामा मस्जिद और दरियागंज के मध्य एडवर्ड पार्क वहां प्रकाश भी मद्धिम सा है—ताड़ के जैसे ऊँचे ऊंचे पेड़ों की छाँह तले इन्तजार मिलन में बदल रहा हैं। धीरे से बाते हो रही हैं। मुल्ला जी बाँग देकर कुछ बाधक से बनते दिखाई देते हैं। सड़क पर साइकिलों की घन्टियाँ बेतरह टुनटुना रही हैं। मोटरकारें तो हवा से बातें कर रही हैं।

मैं दरयागंज की चकाचौंध से घबरा कर इसी पार्क में आया हूं। पार्क के एक किनारे कोई टैक्सी खड़ी है टैक्सी ड्राईवर सरदार जी टैक्सी से कुछ दूर पर चहल कदमी कर रहे हैं और टैक्सी के भीतर दो जानें हैं, मैं नहीं कह सकता कौन हैं अन्धेरे में क्या कहा जा सकता है कि यह क्या है। हां! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि दो आकृतियाँ हिल डुल रही हैं।

कहते हैं, लोग यह सारा क्षेत्र पुरानी दिल्ली का पेरिस है—हां, सो तो देख ही रहा हूं—इस क्षेत्र में बड़ी स्तब्धता फैली हुई है। एडवर्ड

पार्क से दिल्ली गेट तक चहल पहल ही दिखाई दे रही है। सामने एक "एयर कण्डीशन्ड" (शीतताप नियंत्रित) सिनेमा है। वहाँ बड़ी भीड़ है। उधर सामने की अट्टालिकाओं पर रंग बिरंगे प्रकाश क्षण में बुझते और क्षण में जलते हुए बड़े २ विज्ञापन प्रदर्शित हो रहे हैं। विज्ञापन वालों का विज्ञापन हो रहा है और देखने वालों का मनोरंजन ! मैं खड़ा खड़ा देख रहा था, पास ही मोटर की कतार को बड़ी कठिनाई से पार कर एक गाँव का निवासी अपने छोटे लड़के का हाथ पकड़े इसी ओर आ गया। वह लड़का वृद्ध पिता का हाथ पकड़े विस्मित सा कभी इधर देखता कभी उधर देखता सोच रहा है, "न जाने कहाँ आ फंसे हम,।"

.. बापू रे ! जे का होरया है एक बार लाल उजालो हो जावे है, फिर सफेद और पाछे हरी और बापू ! जे देख अब से सुसरी बुझ ही गई" वह लड़का उस विज्ञापन की ओर उंगली उठाये अपने पिता से पूछ रहा था, जो स्वचालिति विद्युत से जल रहे थे।

"जाने का होव रे ! जो शहरी भारी ठग होवे हैं जे भी कोई ठगी ही होई" यही उस ग्रामवासी का सीधा सा उत्तर था। वैसे उसे स्वयं पता नहीं था यह है क्या मुसीबत, परन्तु एक दृष्टि से वह ठीक ही कह गया था। वे लोग वैसे ही आगे को निकल गये। फिर जो दूसरी ओर दृष्टि गई तो देखा, एक औरत, जिसके कपड़े खून से तर-बतर से लग रहे थे वह मेरे पास आई और चार पैसे की माँग की। उसका कहना था कि आज ही उसे प्रसव हुआ है प्रमाण उसकी वो खून से लथपथ साड़ी थी। झट से जेब में हाथ चला गया फिर अकस्मात ही ध्यान आया कि गत दस दिन पूर्व यह युवती इसी वेष में मुझे स्टेशन पर मिली थी वहां भी वह यही बात बता रही थी—बात क्या है मैं सोच रहा था।

तो क्या इन दस दिनों में नित्य इसे प्रसव ही होता रहा है ?

तब समझ में आया कि अरे भाई दिल्ली है सब "मेक अप, का कमाल है। मैं उसके इस कौशल को देख मन ही मन मुस्कराया और फिर उसे चार पैसे देकर उसकी मांग पूरी कर दी वह चली गई दूसरी

ओर ।

तब तक इक्कीस नम्बर की बस आ गई । क्यू में खड़े लोग झपट्टा मार कर उस पर टूट पड़े । भीड़ में एक व्यक्ति बस में चढ़ती एक औरत का पर्स मार कर भीड़ में विलीन हो गया । वह शोर मचाती रह गई । बस चल पड़ी । बाकी लोग वहीं खड़े होकर पुनः बस की प्रतीक्षा करने लगे ।

"मोती महल में बड़ी भीड़ थी । बाहर मोटर कारों की कतारें पंक्ति बद्ध खड़ी हैं । कुछ देर उसके बाहर चक्कर काटता रहा । वहाँ भीतर से आने वाली मसालों की सुगन्धी मेरी नाक की राह भीतर के प्रविष्ट हो रही थी । एक महाशय मुझे बड़ा घूर घूर कर देख रहे थे जैसे कोई सी-आई डी हों और मैं कोई डाकू ।

तब तक एक देवी जी भीतर से निकल कर बाहर की ओर मुड़ीं । मैं उनसे काफी दूर पर खड़ा था, परन्तु वे मानीं ही तो नहीं, और अपना कन्धा मुझ से घिस कर आगे बढ़ गईं, और पुनः पीछे मुड़ कर मुझे ऐसे घूरा जैसे मैं कोई उठाईगीरा हूं । आव देखा ना ताव बरस पड़ीं "शरम नहीं आती तुम्हें लड़कियों से छेड़खानी करते हो ?

आप तो कुछ कहिये साहब मेरे बारे में, भला मेरे जैसा आदमी क्या किसी से छेड़खानी कर सकता है । मेरा तो शरीर ही जैसे ठंडा हो गया था, देवी जी ! आप मुझे गलत समझ रही हैं । दरअसल में मैं तो—

'मैं तो मैं तो क्या करते हो चलो आज तुम्हें सबक दिया जाये,ताकि आगे के लिए तुम्हारे होश तो ठिकाने लगे चलो—उन देवी जी ने मुझ पर पूरा रौब जमाते हुए कहा । और तब तक पास से एक सज्जन आकर देवी जी की पैरवी करने लगे । उनकी सहायता से महाशय जी मुझे पास के फैजबाजार थाने की ओर ले चलीं । मैं भी जैसे फँस गया था उनके चंगुल में, परन्तु मुझे तो दुख इस बात का था कि मैं इनकी दृष्टि में एक बुरा आदमी बन गया हूं अब मैं कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैं अच्छा

आदमी हूं दो एक आदमी और मामले में पड़े तो उन देवी जी के साथ चलने वाले महाशय जी ने कहा यह आपसी झगड़ा है इस पर लोग वापिस हो गये।

ज्योंही हम लोग थाने के पास आये ही थे कि मुझे अगला दृश्य याद आने लगा, मैंने सोचा भारी उलझन में पड़े। तब मैंने साफ साफ शब्दों में देवी जी से माँफी माँग ली, पर देवी जी पर कोई प्रभाव न पड़ा। इतने ही में उनके साथी ने मुझसे धीमी आवाज में कहा...ला दस पन्द्रह रूपये निकाल जल्दी से आगे कभी ऐसा किया तो समझ लेना। मैं मन ही मन सब समझ गया था कि देवी जी केवल देवी जी ही नहीं बल्कि "श्री देवी जी हैं। और मैंने फौरन एक दस का नोट उनके हाथ में रख दिया। देवी जी विजय की खुशी में मुस्करा रही थीं उनसे पिण्ड छुडा कर मैं पीछे मुड़ गया और ६ नम्बर की बस में बैठ कर मैंने आंखे बन्द कर लीं। कुछ देर तक होश ही न रहा और फिर जब सांस लेकर थूक सटकते हुए मैंने पीछे मुड़ कर देखा तो दरियागंज की रंगीन बहारें मुझे फिर अपनी ओर खींच रही थीं भाई हम तो दूर से ही प्रणाम करते हैं ऐसी जगह को मन ही मन यह बुदबुदाते हुए मैं बस के घर्र घर्र की आवाज में खो गया तब तक कन्डक्टर ने जो मेरे पास ही आ गया था, मेरा ध्यान भंग किया—हां, साहब टिकट

मैंने कहा, टिकट

मैं चौक पड़ा और जेब में हाथ डालते हुये कहा" हां हां लीजिए भई मैंने एक रुपये का नोट उसके हाथ पर रख दिया।

कहां जाना है वह बोला ?

जहां तक बस जाती हो" मैंने साधारण स्वर में कहा-वह मुस्कराता रह गया। हमारी बस अब दरिया गंज के बाहर दौड़ रही थी।

परान्नं दुर्लभं लोके

लोगों का कहना है कि अविवहित जीवन से तो जीवन न रहे यह अच्छा है। भला यह भी कोई बात है न खाने का ठीक प्रबन्ध न पहनने का ठीक तरीका और रहने के लिए तो कहना ही क्या। मतलब यह है कि किसी भी बात में स्थिरता नहीं। यह बात और कोई कहता तो कोई बात न थी किन्तु मेरे एक बेतकल्लुफ सम्पादक साथी ने एक दिन मुझ से यह बात कही थी। मैंने उनसे कहा कि "भाई अब तो आप अच्छे खासे गृहस्थ हैं फिर यह फंदा किस पर कसा जा रहा है ?"

श्रीमान जी ने मुझ पर ही एक तिरछी दृष्टि डालते हुए कहा "क्यों यदि मैं आप से ही कुछ कहूं तब ?"

"आप भूल" में हैं, आप गृहस्थ बन कर जो सुख और अनुभव कर रहे हैं; यह तो चार दिन की बात है—श्रीमान जी ! जरा साल दो साल बाद देखिएगा, क्या हाल होते हैं आपके। एक साहब आपकी उंगली पकड़े हुए आप से कह कह रहे होंगे कि बाबू जी, अम तो तकड़ी (ककड़ी) खायेंगे और अभी आप उन्हें ककड़ी खरीद कर देंगे तो दूसरे कह उठेंगे "अमलूद लेंदे"। इन सब से पीछा छुड़ायेंगे तो फिर "उनकी" ओर से फर्मायश होगी "देखो न, वह कितनी अच्छी साड़ी है। चलो उसे ले ही लें जरा इस मास सिगरेट कम पीना और क्या।" मजाल है आपकी जो आप उनकी बात टाल सकें और फिर यह तो भूमिका मात्र है, आगे जो हालत आपकी होगी उसका स्मरण मात्र करने से मुझे आप पर दया आ रही है" मैंने उनकी बात का उत्तर दिया। वे हंस पड़े।

हम लोग बातें करते करते चाँदनी चौक के निकट आ गये थे, तभी सम्पादक महोदय ने मुझ से कहा "सुनाओ तुम्हारा प्लान क्या है आज

कल ?"

"चलिये किसी चाय खाने में, तब बता सकूँगा। वैसे मेरी योजनाएं भले ही आपको अच्छी न लगें किन्तु मैं तो पूरे महीने का वेतन उस योजना की बदौलत बचा लेता हूं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुंवारों को मैं अपनी इस योजना के बारे में कुछ नहीं बताता। इसका कारण स्पष्ट है कि मुझे उनसे खतरा है, और वह यह कि कहीं यदि उन सबने इस योजना को कार्य रूप दे दिया तो फिर यह एक आम चीज बन जायगी और मुझे फिर घाटे की नौबत आ जायगी। मैंने अपनी भूमिका समाप्त की। पास ही एक चाय की दुकान नजर आ रही थी, हम दोनों उसमें प्रविष्ट हो गये। कुर्सी पर बैठते ही उन्होंने बड़ी उत्सुकता दिखाते हुये पुनः कहा "अच्छा भाई वह योजना आखिर है क्या ?"

बैरे को चाय का आर्डर देते हुए मैंने अपनी वह योजना जिसे मैं दो मास से कार्य रूप देता चला आ रहा था, इन शब्दों में उन्हें सुनानी प्रारम्भ की।

"जब मैंने देखा कि साल भर से कमाई का एक भी धेला नहीं बच रहा और कुछ न कुछ अगले मास के लिए चढ़ ही जाता है तो एक रात मैंने एक कापी में अपने प्रिय मित्रों के नाम क्रम से लिखना शुरू कर दिया। आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि कोई ढाई सौ मित्रों के नाम लिख गया और वे सभी ऐसे मित्र थे जिन्हें मैं बेतकल्लुफ कह सकता था। फिर लाल स्याही से उन ढाई सौ में से कोई बासठ मित्रों के नामों के आगे निशान लगा दिये।"

चाय आ गई थी। सम्पादक जी ने एक प्याला मेरी ओर बढ़ाते हुये कहा "योजना तो तुम्हारी रहस्यमय जान पड़ती है, पर देखता हूं कि तुम भी चतुर उपन्यासकारों के समान उसके रहस्य को आगे ही बढ़ाते जा रहे हो।" फिर चाय की चुस्की लगाते हुये उन्होंने ओठों पर धीमी सी मुस्कान लाते हुये कहा "चाय भी पीते रहो न।" मैंने कप उठा कर

एक ही घूँट में आधा कप साफ कर दिया और फिर अपनी अधूरी बात प्रारम्भ की।

"हाँ तो जब मैंने बासठ मित्रों के नामों पर लाल निशान लगा लिये तब एक और कापी में क्रम बार उनके नाम साफ साफ लिखे और उस कापी के बाहर लिखा "भोजन व्यवस्था"। यह सब लिखने के बाद एक बार वेसब मित्र मेरे सामने घूम से गये...एक एक करते उनकी सूरतें मेरे मन की आँखों के कैमरे में चित्रित होती रहीं—मैं कल्पना करनेलगा, नाना प्रकार के व्यंजनों की। सोचते सोचते मुँह से राल टपक कर नीचे गिर गई। अभी तक आप यह नहीं समझे होंगे कि आखिर इतनी रात में यह सब बखेड़ा मैं क्यों ले बैठा। वह भी सुनिये।"

"बासठ मित्र चुने गये और वह भी ऐसे कि जब इतनी दूर से उनसे मिलने जाया जायेगा तो भोजन तो वहाँ करना ही होगा। फिर वह तो मित्रों की अपनी परिस्थिति के अनुसार बात है। हलुवा पूरी रोज रोज न सही पर आलू भरे पराठे, करेले की खुस्क सब्जी और घीये का चटपटा रायता तो कहीं नहीं गया। फिर यदि कोई त्यौहार बीच में आन पढ़ा तो उस दिन खीर के भी दर्शन अवश्य होंगे यह तो आप जानते ही हैं कि खीर मुझे कितनी प्रिय हैं। इस बात का अन्दाजा आप एक बात से ही लगा सकते हैं कि मेरे एक मित्र किंग्सवे कैम्प में रहते हैं। एक बार उन्होंने मुझे खीर का निमन्त्रण दिया। दुर्भाग्य से उस दिन मेरे पास इतने पैसे तक नहीं थे कि मैं मथुरा रोड से वहाँ तक का बस भाड़ा साढ़े पाँच आने चुका सकता। साइकिल एक ऐसे मित्र माँग कर ले गये कि जिन्हें उन दिनों पैसे बचाने का भूत बुरी तरह चढ़ा हुआ था और उन्होंने अपने मित्र की साइकिलें माँग माँग कर बस भाड़ा बचाने का एक नया अभियान शुरू कर रखा था। ऐसे समय में कोई चारा न था, किन्तु खीर छोड़ना मुझे किसी भी कीमत पर स्वीकार न था। अन्ततः मैंने यही निश्चय किया कि मैं अगले दिन प्रातः ही पैदल मार्च करूँ और यही

किया। अगले दिन सात मील चल कर जब मैं उनके घर पर पहुंचा तो मेरे चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी। फिर भी मैंने अपने को काफी संयत करते हुए उन्हें बताया कि मुझे टैक्सी में आना पड़ा है, क्यों कि साइकिल तो खराब पड़ी थी और बसों की भीड़ से तो मैं वैसे ही घबराता हूं जैसे उधार मार कर भागा हुआ व्यक्ति अपने तकाजेदार से। यह सब बता कर मैं मन ही मन अपनी बुद्धि की दाद दिये बिना न रह सका किन्तु तभी उन्होंने प्रश्न किया "कितने पैसे लग गये टैक्सी में ?"

मेरे तो दिमाग के तोते उड़ गये। मुझे यह आशा न थी कि यह महाशय ऐसा प्रश्न एकाएक कर बैठेंगे। फिर भी अपने को हौसला देते हुये मैंने कहा" चार रुपये दस आने लगे।"

इस पर उन्होंने एक बार सर से पैर तक पैनी निगाहों से मुझे ऐसे देखा जैसे मैं उनसे झूँठ बोल रहा हूं और फिर तनिक मुस्कराते हुए वे बोले "तब तो तुम से ज्यादा पैसे ले लिए हैं, उसने। मीटर ठीक से देख भी लिया था या नहीं, यहाँ तक तो मथुरा रोड से तीन रुपए मात्र लगते हैं।"

लीजिए मेरे तो रहे सहे होश और भी जाते रहे, मैंने सोचा खूब पकड़े गये आज, किन्तु सरस्वती तो सदा मेरी जिह्वा पर निवास करती है। मैंने यह कह कर अपना पिंड छुड़ाया कि मीटर में तो तीन ही रुपये चढ़े थे, वाकी तो मैंने उसे बतौर बख्शीश दिये थे। इस पर वे भी कुछ न बोले और कुछ देर बाद मेरी प्रिय खाद्य वस्तु खीर मेरे सामने आई। आप शायद विश्वास न करें सम्पादक जी, मैंने वह छक कर हाथ साफ किया कि शायद वे अब भूल कर भी किसी को खीर का निमन्त्रण न देंगे। क्योंकि मैंने उनकी श्रीमती जी को भीतर धीरे से यह कहते सुना था कि "तुम्हें तो मिर्चे के साथ रोटी खानी होगी खीर तो तुम्हारे दोस्त सब चट कर गये" खैर, यह सब तो मैं अपने "खीर प्रेम" की चर्चा में कह गया अब योजना की अन्तिम कड़ी पर आता हूं।"

"नित्य प्रति दो मित्रों के यहां मैं जाता। एक के घर प्रातः तथा दूसरे के घर साँय का भोजन कर लौट आता। जिस मास के तीस दिन होते उस मास में दो मित्र मेरा सत्कार करने से बंचित रहते और जिस मास में इक्तीस दिन होते उस मास उन्हें भी मैं पारी-पारी से कृतार्थ कर आता। इसी बीच एक नई अड़चन सामने आ गई। वह यह कि कभी जब वह मित्र मुझे अनुपस्थित मिलते जिनके यहाँ मैं मिलने जाता तो वहाँ से भूखे लौटने में आत्मा को कलपाना मुझे ठीक न जंचता। अतः रजिस्टर में दस ऐसे मित्रों के भी नाम लिख डाले जो आपत्तिकालीन परिस्थिति" में काम आ सकें। मतलब यह कि जब वह मित्र दुर्भाग्य से न मिलें जो मेरी योजना के मासिक सदस्य हैं, तब उस आपत्तिकालीन लिस्ट" में से एक मित्र के घर मिलने के बहाने जाने पर मेरा वह कार्य सिद्ध हो जाता, इस तरह महीने में तीस दिन में एक मित्र के घर जा धमकता और जब उसे यह पता चलता कि यह बेचारे इतनी दूर से मिलने आये हैं तो भोजन की बात तो वह पूछता ही, और अपना काम बन जाता।"

"जब मेरा यह क्रम चलता रहा तो कुछ मित्रों के स्वभाव में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था, अतः उनमें से कई मित्र जो पहले दो चार बार भोजन करने का आग्रह करते थे अब केवल एक ही बार कहते "भोजन करके जाना।" मनुष्य वही है जो समय की गति के साथ आगे बढ़े, और मैं तो इस माने में पूरा "फार्वर्ड" हूं। अतः पहले वे तीन चार बार खुशामद करते तब कहीं मैं खाने की 'हाँ' करता पर अब उनके मुँह से बात निकली कि तुरन्त सम्मति सूचक सर हिला देता हूं।"

'यही नहीं अब तो मैंने एक नया रजिस्टर और तय्यार किया है, जिस में बासठ ऐसे मित्रों के नाम हैं, जिनके यहां मैं सूबह शाम चाय पीने और नाशता करने जाता हूं। और तारीफ की बात तो यह है कि उन्हें यह जान कर प्रसन्नता ही होती है कि इतनी दूर से बेचारे मिलने आये हैं, अतः कभी कभी नाशता ही इतना जोरदार हो जाता है, कि भूख ही

समाप्त हो जाती है, फिर भी खाना छोड़ना मैं अच्छा नहीं समझता। सब से महीने में एक बार ही मिलता हूं अतः किसी को बोझ भी नहीं मालूम होता—फिर अगर हम महीने में एक बार किसी मित्र से मिलनेके बहाने उसके घर चले गये तो उसे तो पता भी न चलेगा, अपनी योजना पर तो उसे स्वप्न में भी विश्वास न होगा और फिर इसी तरह अपना काम चलता रहेगा। अब तो सम्पादक जी, मैं सदस्य संख्या बढ़ा रहा हूं, ताकि सदस्यों पर अधिक भार न पड़े और दो महीने बाद एक का नम्बर आए।"

सम्पादक जी ठठा कर हँस पड़े। बोले—"भाई गजब की सूझ है, तुम्हारी योजना तो लाभदायक है, पर यह तो बताओ बस भाड़ा भी तो काफी खर्च हो जाता होगा—उसका घाटा कैसे पूरा करते हो ?"

"आप को शायद याद नहीं रहा मेरे पास तो साइकिल है और उसमें खर्चा ही क्या। साल भर में कुछ सफाई कराली सो तो आप लोगों के यहां से जो साप्ताहिक और मासिक ले आता हूं उनकी रद्दी से ही निकल आता है।" मैंने हँसते हुए कहा—और फिर डायरी निकाल कर लिखा—

सदस्य संख्या २३२ सम्पादक......।

"यह क्या लिखा तुमने" कहते हुए सम्पादक जी मुझसे डायरी झपट ली। अपना ही नाम लिखा देख कर उनकी हँसी और भी तेज हो गई। हँसते-हँसते वे कहे जा रहे थे—"लो हमें भी नहीं छोड़ा।" डायरी मुझे लौटाते हुए उसके पहले पृष्ट पर उनकी दृष्टि टिक गई। शायद वे मेरे उस गुरुमंत्र को पढ़ने में लगे थे:—

"परान्नं दुर्लभं लोके, शरीराणि पुनः पुनः" अर्थात् दूसरे का अन्न बार बार प्राप्त नहीं, होता, यह शरीर तो न जाने कितनी बार मिलता है।

राजू

बालक अभागा जाँन पड़ता था। उसकी आयु मुश्किल से पांच वर्ष की होगी। आँखों से कातरता और सीधापन झाँक रहा था। बाल बेतर-तीब बढ़ गये थे। कमीज फटी और गन्दी थी—जो किसी दयालु प्रदत्त जान पड़ती थी; उसके बटन नदारद थे और लम्बाई यह साफ बतला रही थी कि यह उस आयु के लड़के की कमीज नहीं। उसके हाथ में आलमुनियम की एक टूटी थाली थी, जिस पर मैल जमी हुई थी और वह चिपटी हो चली थी। मकान के दरवाजे पर आकर उसने पुकारा—"दया करो बाबू।"

दो-चार बार आवाज देने के साथ ही एक आदमी बाहर आया और डपटकर बोला—"क्या है रे, भाग जा यहाँ से।"

"नहीं बाबू एक पैसा.........!"

"जायगा या नहीं ?"

आवाज सुनकर लड़का सहमी आँखों से देखने लगा और चलने को तैयार हुआ; तभी किवाड़ के पीछे से स्त्री कन्ठ से आवाज आई "जरा रुकना !"

लड़का ठिठक कर खड़ा हो रहा।

स्त्री के मुख पर दया के भाव झलक रहे थे। बोली—"इस बेचारे को क्यों डाँट रहे हो, ? देखते हो कैसा फूल सा लड़का है।"

संकेत से उसे बुलाकर, प्यार भरे शब्दों में उसने पूछा—"बेटा क्या नाम है तेरा ?"

अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को फैलाकर लड़के ने कहा—"राजू...।"

स्त्री के मुख पर वात्सल्य की रेखा झलक पड़ी। पूछा—"तुम्हारे माँ-बाप हैं ?"

"नहीं..." लड़के ने करुणा भरी आँखों में कहा—

"कोई भी नहीं ?"

"नहीं।"

"क्या हुआ ?"

"नहीं जानता।"

"कहां रहना होता है ?"

"जहाँ छाँह मिल जाये।"

"ऐसा क्यों रे ?" स्त्री का हृदय भर आया।

"तब और कहां रहूँ ?"—लड़के की मुद्रा उदास हो गयी !

कुछ देर तक चुप रहने के बाद स्त्री ने कहा—" राजू, तू मेरे यहां रहेगा रे ?"

"आपके यहाँ ? आप रक्खेंगी ?" लड़के को विश्वास ही नहीं हो रहा था।

"हाँ ? आज से तू यहीं रह। भीख न माँग; मैं तुझे खाने को दूंगी पढ़ाऊँगी; पढ़ाकर बड़ा आदमी बनाऊंगी ! क्यों रे राजू, तू मुझे भूलेगा तो नहीं ?"

राजू की आंखें भर आई थीं, वह कुछ कह न सका।

+ + +

राजू नेभीख मांगनी छोड़ दिया अब वह वहीं रहने भी लगा। किन्तु घर के मालिक देव बाबू को यह पसन्द न आया। उन्होंने भौंहें चढ़ाकर कहा—"यह सब क्या जंजाल है ? जिस तिसके आवारे लड़के को घर में इस तरह रख लेना क्या अच्छा है ? तुम देख लेना सविता यह पक्का चोर निकलेगा।"

"अरे·····नहीं-नहीं—सविता ने बीच में टोककर कहा—"मैं

इसे अच्छा आदमी बनाऊँगी, फिर भला यह चोर क्यों होने लगा ?"

देव बाबू अपनी स्त्री को चाहते बहुत थे, अतः चुप रह गये।

सविता के अब तक कोई सन्तान नहीं थी; इसलिए मातृत्व की प्यास वह राजू से ही बुझाने लगीं। राजू भी इस अपरिचिता स्नेहमयी से घुलमिल गया।

सविता ने प्यार से एक दिन उसे पुचकार कर कहा राजू जानता है मैं कौन हूं ?"

राजू कुतूहल भरी आँखों से सविता की ओर देखने लगा।

"मैं तेरी मां हूं रे !"

"मेरी मां ?" राजू को सी अजीब बात यह लगी।

"क्यों, तुझे यकीन नहीं होता रे ?"

"पर मैंने तो सुना है, मेरी मां कब की मर चुकी।"

"नहीं रे, मैं मरी नहीं, तुझे छोड़कर भाग गई थी। अब फिर तुझे पा गई हूं।"

इसी प्रकार स्नेह के अंचल में राजू को यहां रहते कई महीने हो गये। एक दिन उसने सुना—उसके एक छोटा भाई हुआ है ! जिस दिन उसे अपने छोटे भाई को देखने का मौका मिला, उसकी खुशी का आज अन्त न था। छोटा सा बच्चा झूले पर किलकारियाँ मारता, हाथ पैर फेंक रहा था ! सविता ने हंसकर कहा—"देख तो राजू, तेरा छोटा भाई कैसा है ?"

राजू ने खुशी से उछल कर कहा—"बड़ा अच्छा है मां राजू, मैं इसे खिलाऊं लाओ इधर।"

सविता हंसी रोक कर पूछा—"राजू, इसे तुम हमेशा प्यार करोगे।"

"हाँ मां"—बच्चे के नन्हे कोमल हाथ को चूमते हुए राजू ने कहा।

— — —

बच्चे का नाम स्वदेश रखा गया। वह शीघ्रता से बढ़ने लगा।

राजू उसे आठों पहर गोद में लिये फिरता। बच्चा उससे बहुत हिलमिल गया।

धीरे-धीरे दो ढाई वर्ष बीत गये। राजू की उम्र अब नौ साल की हो चली थी।

किन्तु देव बाबू के दिल में राजू के लिए अब भी कटुता भरी थी। वे नहीं चाहते थे कि राजू उनके घर में रहे। शायद उसे अपशगुन का सूचक समझ रहे थे।।

एक दिन बड़ी दुःखद बात हो गई। स्वदेश का सोने का हार गायब हो गया। घर भर में शोर मच गया।

देव बाबू ने राजू को बुलाकर पूछा—"बता रे, हार कहां रक्खा है ?"

"हार कैसा हार ?"राजू को आश्चर्य हो रहा था।

"बड़ा भोला बनता है' पाजी कहीं का बता हार। तू ही तो उसे गोद में लिये रहता है।"

"पर मैंने कब लिया ?"

"मुझे क्या पता ?" तुझे बताना ही पड़ेगा......नहीं तो तेरी हड्डी पसली तोड़ दूंगा। सोने का गुम होना अशुभ है।"

राजू चुप खड़ा था।

"...बताता है कि नहीं ?"

राजू फिर भी चुप था।

क्रोध में आकर देव बाबू ने उसके गाल पर चार-पांच तमाचे जड़ दिये। उसका चेहरा लाल हो उठा। उंगलियों का निशान गाल पर साफ दिखाई पड़ने लगा। उसकी आँखों से आंसू टपटप गिरने लगे। तम-तमाये चेहरे से दो चार लातें और जमाकर देव बाबू चलते बने।

राजू फूट-फूटकर रोने लगा। सचमुच उसे बड़ी साघातिक चोट लगी थी। अपने ऊपर लगे झूठे आरोप से उसे और भी वेदना हो रही थी।

रात का घना अंधकार चारों ओर फैल गया था, राजू ने अपनी दो पुरानी चीजें निकाली; एक थीं उसकी फटी कमीज और दूसरी थी वह आलमुनियम की टूटी थाली! उसी फटी कमीज को पहन कर और वही थाली हाथ में लेकर वह उस निविड़ अंधकार में खो गया।

सवेरे राजू का पता न था!

राजू के चले जाने के बाद ही एकाएक स्वदेश को बुखार चढ़ आया। उसने रोते-रोते राजू के लिए जमीन-आसमान एक कर दिया!

डाक्टर-पर-डाक्टर आने लगे। धनी माँ-बाप का एकमात्र लड़का! किन्तु राजू का ज्वर न उतरा, बढ़ता ही गया।

उस दिन सविता अपने सन्दूक से एक चीज निकालते समय अवाक् रह गयी। उसमें स्वदेश का सुनहला हार पड़ा था! उसने क्षीण स्वर अपने पति को पुकारा। हार देखकर देव बाबू के पैरों के नीचे मानों धरती खिसक गई। अपनी नादानी पर आज जीवन में पहली बार उन्हें घोर पश्चात्ताप हुआ। सविता ने आंखों में आंसू भरकर कहा—"स्वदेश को यदि बचाना है, तो राजू को ढूंढ़ो। तुमने उसको समझने में भूल की है। वह बड़ा सुलक्षण था!"

देव बबू ने राजू को ढूँढने के लिये बहुत उपाय किये। वे स्वयं धूप और वर्षा में नगर के कोने-कोने में उसे ढूंढ़ने जाते। इधर स्वदेश की हालत और भी खराब भी होती गई।

अचानक एक दिन एक पेड़ के नीचे उन्होंने राजू को बैठा पाया। उससे लिपट कर रूंधे कंठ से देव बाबू ने कहा—"मुझे माफ कर दे ... मैंने बड़ा पाप किया...चल देख, तेरा स्वदेश तेरे बिना छटपटाकर कर रहा है।

राजू को जैसे बड़े जोरों का धक्का लगा। उसे ऐसा लगा कि जैसे कोई बड़ा अनर्थ और पाप कर डाला है। उसी क्षण वह स्वदेश को देखने चल दिया।

राजू को सामने देखकर स्वदेश की आंख चमक उठी। आज जाने कितने दिन वाद उसके शुष्क अधरों पर मुस्कुराहट दौड़ी ! वह तुतली भाषा में पुकार उठी—"भ···इ···या ?"

सविता और देव बाबू के आनन्द का पारावार न था।

सविता ने अपने पति के कान में अस्फुट शब्दों में कहा—देखा··· मैंने कहा था न कि तुमने मेरे बच्चे को नहीं पहचाना···।"

उधर राजू के आँसू अविरल भाव से बहे जा रहे थे।